विषय-सूची

(१) विनयाधिकारिक : पहला अधिकरण

विषय	पृष्ठ
प्रकरण और अधिकरण का निरूपण	१
१ : विद्या-विषयक विचार : आन्वीक्षकी	८
२ : विद्या-विषयक विचार : त्रयी	१०
३ : विद्या-विषयक विचार : वार्ता और दण्डनीति	१२
४ : वृद्धजनों की संगति	१४
५ : काम-क्रोधादि छह शत्रुओं का परित्याग	१६
६ : साधु स्वभाव राजा की जीवनचर्या	१८
७ : अमात्यों की नियुक्ति	२०
८ : मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति	२३
९ : गुप्त उपायों से अमात्यों के आचरणों की परीक्षा	२५
१० : गुप्तचरों की नियुक्ति (स्थायी गुप्तचर)	२९
११ : गुप्तचरों की नियुक्ति (भ्रमणशील गुप्तचर)	३२
१२ : अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष की सुरक्षा	३७
१३ : शत्रु-देश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को मिलाना	४०
१४ : मन्त्राधिकार	४३
१५ : सन्देश देकर राजदूतों को शत्रुदेश में भेजना	४९
१६ : राजपुत्रों से राजा की रक्षा	५३
१७ : नजरबन्द राजकुमार और राजा का पारस्परिक व्यवहार	५८
१८ : राजा के कार्य-व्यापार	६१
१९ : राज-भवन का निर्माण और राजा के कर्तव्य	६५
२० : आत्मरक्षा का प्रबन्ध	६९

(२) अध्यक्षप्रचार : दूसरा अधिकरण

१ : जनपदों की स्थापना	७७
२ : ऊसर भूमि को उपयोगी बनाने का विधान	८२
३ : दुर्गों का निर्माण	८५
४ : दुर्ग से सम्बन्धित राजभवनों तथा नगर के प्रमुख स्थानों का निर्माण	९१
५ : कोष-गृह का निर्माण और कोषाध्यक्ष के कर्तव्य	९५

72036



॥ श्रीः ॥

कौटिलीयम्

अर्थशास्त्रम्

ॐ

नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम् ।

(१) पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् ।

(२) तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ।

कौटिल्य का

अर्थशास्त्र

ॐ

शुक्राचार्य और बृहस्पति के लिए नमस्कार है ।

(१) पृथिवी की प्राप्ति और उसकी रक्षा के लिए पुरातन आचार्यों ने जितने भी अर्थशास्त्र-विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया उन सबका सार-संकलन कर प्रस्तुत अर्थशास्त्र की रचना की गई है ।

(२) इस अर्थशास्त्र के प्रकरणों और अधिकरणों का निरूपण इस प्रकार है :

(१) विद्यासमुद्देशः ॥ १ ॥ वृद्धसंयोगः ॥ २ ॥ इन्द्रियजयः ॥ ३ ॥ अमात्योत्पत्तिः ॥ ४ ॥ मन्त्रिपुरोहितोत्पत्तिः ॥ ५ ॥ उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् ॥ ६ ॥ गूढपुरुषोत्पत्तिः ॥ ७ ॥ गूढपुरुषप्रणिधिः ॥ ८ ॥ स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् ॥ ९ ॥ परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः ॥ १० ॥ मन्त्राधिकारः ॥ ११ ॥ दूतप्रणिधिः ॥ १२ ॥ राजपुत्ररक्षणम् ॥ १३ ॥ अवरुद्धवृत्तम् ॥ १४ ॥ अवरुद्धे च वृत्तिः ॥ १५ ॥ राजप्रणिधिः ॥ १६ ॥ निशान्तप्रणिधिः ॥१७॥ आत्मरक्षितकम् ॥१८॥

इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ।

(२) जनपदनिवेशः ॥ १ ॥ भूमिच्छिद्रविधानम् ॥ २ ॥ दुर्गविधानम् ॥ ३ ॥ दुर्गनिवेशः ॥ ४ ॥ संनिधातृनिचयकर्म ॥ ५ ॥ समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम् ॥ ६ ॥ अक्षपटलेगाणनिक्याधिकारः ॥ ७ ॥ समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम् ॥ ८ ॥ उपयुक्तपरीक्षा ॥ ९ ॥ शासनाधिकारः ॥ १० ॥ कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा ॥ ११ ॥ आकरकर्मान्तप्रवर्तनम् ॥१२॥ अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः ॥ १३ ॥ विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः ॥ १४ ॥ कोष्ठागाराध्यक्षः ॥ १५ ॥ पण्याध्यक्षः ॥ १६ ॥ कुप्याध्यक्षः ॥ १७ ॥ आयुधागाराध्यक्षः ॥ १८ ॥ तुलामानपौतवम् ॥ १९ ॥ देशकालमानम्

पहला अधिकरण : विनयाधिकारिक-(राजवृत्ति)-निरूपण

(१) १. विद्या-विषयक विचार; २. वृद्धजनों की संगति; ३. इन्द्रियजय; ४. अमात्यों की नियुक्ति; ५. मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति; ६. गुप्त उपायों से अमात्यों के आचरणों की परीक्षा; ७. गुप्तचरों का निरूपण; ८. गुप्तचरों की कार्यों पर नियुक्ति; ९. अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष की सुरक्षा; १०. शत्रुदेश में कृत्य-अकृत्य पक्ष को मिलाना; ११. मंत्राधिकार; १२. दूतों की कार्यों पर नियुक्ति; १३. राजपुत्र की रक्षा; १४. नजरबन्द राजकुमार का व्यवहार; १५. नजरबन्द (राजकुमार) के प्रति राजा का व्यवहार; १६. राजा के कार्य-व्यापार; १७. राजभवन का निर्माण; १८. आत्मरक्षा का प्रबन्ध ।

दूसरा अधिकरण : अध्यक्षों का निरूपण

(२) १. जनपदों की स्थापना; २. भूमि को उपयोगी बनाने का विधान; ३. दुर्गों का निर्माण; ४. दुर्गविनिवेश; ५. सन्निधाता के कार्य; ६. समाहर्त्ता का कर-संग्रह कार्य; ७. अक्षपटल में गाणनिक के कार्य; ८. गबन किए गये राजधन को पुनः प्राप्त करना; ९. उपयुक्त परीक्षा; १०. शासनाधिकार; ११. कोष में रखने योग्य रत्नों को परीक्षा; १२. खान के कार्यों का संचालन; १३. अक्षशाला में स्वर्णाध्यक्ष का कार्य; १४. विशिखा में सौवर्णिक का व्यापार; १५. कोष्ठागार का अध्यक्ष; १६. पण्य का अध्यक्ष; १७. कुप्य का अध्यक्ष; १८. आयुधागार का अध्यक्ष;

॥ २० ॥ शुल्काध्यक्षः ॥ २१ ॥ सूत्राध्यक्षः ॥ २२ ॥ सीताध्यक्षः ॥२३॥ सुराध्यक्षः ॥ २४ ॥ सूनाध्यक्षः ॥ २५ ॥ गणिकाध्यक्षः ॥ २६ ॥ नावध्यक्षः ॥ २७ ॥ गोऽध्यक्षः ॥ २८ ॥ अश्वाध्यक्षः ॥ २९ ॥ हस्त्यध्यक्षः ॥ ३० ॥ रथाध्यक्षः ॥ ३१ ॥ पत्यध्यक्षः ॥३२॥ सेनापतिप्रचारः ॥३३॥ मुद्राध्यक्षः ॥ ३४ ॥ विवीताध्यक्षः ॥ ३५ ॥ समाहर्तृप्रचारः ॥ ३६ ॥ गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः ॥३७॥ नागरिकप्रणिधिः ॥३८॥

इत्यध्यक्षप्रचारो द्वितीयमधिकरणम् ।

(१) व्यवहारस्थापना ॥ १ ॥ विवादपदनिबन्धः ॥ २ ॥ विवाहसंयुक्तम् ॥ ३ ॥ दायविभागः ॥ ४ ॥ वास्तुकम् ॥ ५ ॥ समयस्यानपाकर्म ॥ ६ ॥ ऋणादानम् ॥ ७ ॥ औपनिधिकम् ॥ ८ ॥ दासकर्मकरकल्पः ॥ ९ ॥ संभूयसमुत्थानम् ॥ १० ॥ विक्रीतक्रीतानुशयः ॥ ११ ॥ दत्तस्यानपाकर्म ॥ १२ ॥ अस्वामिविक्रयः ॥ १३ ॥ स्वस्वामिसंबन्धः ॥ १४ ॥ साहसम् ॥ १५ ॥ वाक्पारुष्यम् ॥ १६ ॥ दण्डपारुष्यम् ॥ १७ ॥ द्यूतसमाह्वयम् ॥ १८ ॥ प्रकीर्णकानि ॥ १९ ॥

इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ।

(२) कारुकरक्षणम् ॥ १ ॥ वैदेहकरक्षणम् ॥ २ ॥ उपनिपातप्रतीकारः

---

१९. तोल-माप का निश्चय; २०. देश और काल का मान; २१. शुल्क का अध्यक्ष; २२. सूत का अध्यक्ष; २३. कृषि का अध्यक्ष; २४. आबकारी का अध्यक्ष; २५. वधस्थान का अध्यक्ष; २६. वेश्यालयों का अध्यक्ष; २७. परिवहन का अध्यक्ष; २८. पशुओं का अध्यक्ष; २९. अश्वशाला का अध्यक्ष; ३०. गजशाला का अध्यक्ष; ३१. रथसेना का अध्यक्ष; ३२. पैदल सेना का अध्यक्ष; ३३. सेनापति का कार्य; ३४. मुद्रा-विभाग का अध्यक्ष; ३५. चरागाह का अध्यक्ष; ३६. समाहर्त्ता का कार्य; ३७. गृहपति, वैदेहक तथा तापस के वेष में गुप्तचर; और ३८. नागरिक के कार्य ।

तीसरा अधिकरण : न्याय का निरूपण

(१) १. व्यवहार की स्थापना; २. विवाद पदों का विचार; ३. विवाह-सम्बन्धी विचार; ४. दाय-विभाग; ५. वास्तुक; ६. समय (प्रतिज्ञा) का न छोड़ना; ७. ऋण लेना; ८. धरोहर-सम्बन्धी नियम; ९. दास और श्रमिकों के नियम; १०. साझेदारी का हिस्सा; ११. क्रय-विक्रय-सम्बन्धी बयाना; १२. देने का वचन देकर फिर न देना; १३. अस्वामि-विक्रय; १४. स्व-स्वामि-सम्बन्ध; १५. साहस; १६. वाक्पारुष्य; १७. दण्डपारुष्य; १८. द्यूत-समाह्वय; और १९. प्रकीर्णक ।

चौथा अधिकरण : कण्टक-शोधन

(२) १. शिल्पियों से देश की रक्षा; २. व्यापारियों से देश की रक्षा; ३. दैवी

॥ ३ ॥ गूढाजीविनां रक्षा ॥ ४ ॥ सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् ॥ ५ ॥ शङ्कारूपकर्माभिग्रहः ॥ ६ ॥ आशुमृतकपरीक्षा ॥ ७ ॥ वाक्यकर्मानुयोगः ॥ ८ ॥ सर्वाधिकरणरक्षणम् ॥ ९ ॥ एकाङ्गवधनिष्क्रयः ॥ १० ॥ शुद्ध-श्चित्रश्च दण्डकल्पः ॥ ११ ॥ कन्याप्रकर्म ॥ १२ ॥ अतिचारदण्डः ॥ १३ ॥

इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ।

(१) दाण्डकर्मिकम् ॥ १ ॥ कोशाभिसंहरणम् ॥ २ ॥ भृत्यभरणीयम् ॥ ३ ॥ अनुजीविवृत्तम् ॥ ४ ॥ सामयाचारिकम् ॥ ५ ॥ राज्यप्रतिसंधानम् ॥ ६ ॥ एकैश्वर्यम् ॥ ७ ॥

इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम् ।

(२) प्रकृतसम्पदः ॥ १ ॥ शमव्यायामिकम् ॥ २ ॥

इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम् ।

(३) षाड्गुण्यसमुद्देशः ॥ १ ॥ क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः ॥ २ ॥ संश्रय-वृत्तिः ॥ ३ ॥ समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः ॥ ४ ॥ हीनसंधयः ॥ ५ ॥ विगृह्यासनम् ॥ ६ ॥ संधायासनम् ॥ ७ ॥ विगृह्ययानम् ॥ ८ ॥ संधाय-यानम् ॥ ९ ॥ संभूयप्रयाणम् ॥ १० ॥ यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता ॥ ११ ॥ क्षयलोभविरागहेतवः प्रकृतीनाम् ॥ १२ ॥ सामवायिकविपरि-

---

आपत्तियों का प्रतीकार; ४. गुप्त षड्यन्त्रकारियों से देश की रक्षा; ५. सिद्ध पुरुषों के बहाने प्रलोभन-विद्याओं का प्रकाशन; ६. सन्देह, वस्तु और कार्य के द्वारा चोरों को पकड़ना; ७. आशुमृत की परीक्षा; ८. वाक्यकर्मानुयोग; ९. सभी राजकीय विभागों की रक्षा; १०. एक अङ्ग का वध या उसकी जगह द्रव्यदण्ड; ११. शुद्धदण्ड और चित्रदण्ड; १२. कुँवारी कन्या से सम्भोग करने का दण्ड; और १३. अतिचार का दण्ड ।

पाँचवाँ अधिकरण : योगवृत्त-निरूपण

(१) १. दंडव्यवस्था; २. कोश का संग्रह; ३. भृत्यों का भरण-पोषण; ४. राज्य-कर्मचारियों का व्यवहार; ५. व्यवस्था का यथोचित पालन; ६. राज्य का प्रतिसंधान और ७. एकैश्वर्य ।

छठा अधिकरण : प्रकृतियों का निरूपण

(२) १. प्रकृतियों के गुण; और २. शांति तथा उद्योग ।

सातवाँ अधिकरण : छह गुणों का निरूपण

(३) १. छह गुणों का उद्देश्य; २. क्षय, स्थान तथा वृद्धि का निश्चय; ३. बल-वान् का आश्रय; ४. सम, हीन तथा बलवान् आदि राजाओं का चरित; ५. हीन संधि; ६. विग्रह कर के आसन; ७. संधि कर के आसन; ८. विग्रह कर के यान; ९. संधि कर के यान; १०. सामूहिक प्रयाण; ११. यातव्य और शत्रु के प्रति यान का

मर्शः ॥ १३ ॥ संहितप्रयाणिकम् ॥ १४ ॥ परिपणितापरिपणितापसृताश्च संधयः ॥ १५ ॥ द्वैधीभाविकाः संधिविक्रमाः ॥ १६ ॥ यातव्यवृत्तिः ॥ १७ ॥ अनुग्राह्यमित्रविशेषाः ॥ १८ ॥ मित्रहिरण्यभूमिकर्मसंधय ॥ १९ ॥ पार्ष्णिग्राहचिन्ता ॥ २० ॥ हीनशक्तिपूरणम् ॥ २१ ॥ बलवता विगृह्योपरोधहेतवः ॥ २२ ॥ दण्डोपनतवृत्तम् ॥ २३ ॥ दण्डोपनायिवृत्तम् ॥ २४ ॥ संधिकर्म ॥ २५ ॥ संधिमोक्षः ॥ २६ ॥ मध्यमचरितम् ॥ २७ ॥ उदासीनचरितम् ॥ २८ ॥ मण्डलचरितम् ॥ २९ ॥

इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम् ।

(१) प्रकृतिव्यसनवर्गः ॥ १ ॥ राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता ॥ २ ॥ पुरुषव्यसनवर्गः ॥ ३ ॥ पीडनवर्गः ॥ ४ ॥ स्तम्भनवर्गः ॥ ५ ॥ कोशसङ्घवर्गः ॥ ६ ॥ बलव्यसनवर्गः ॥ ७ ॥ मित्रव्यसनवर्गः ॥ ८ ॥

इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम् ।

(२) शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम् ॥ १ ॥ यात्राकालाः ॥ २ ॥ बलोपादानकालाः ॥ ३ ॥ संनाहगुणाः ॥ ४ ॥ प्रतिबलकर्म ॥ ५ ॥ पश्चात्कोपचिन्ता ॥ ६ ॥ बाह्याभ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारः ॥ ७ ॥ क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः ॥ ८ ॥ बाह्याभ्यन्तराश्चापदः ॥ ९ ॥ दूष्यशत्रुसंयुक्ताः ॥१०॥

निर्णय; १२. प्रकृतियों के क्षय, लोभ और विराग के हेतु; १३. सामवायिक राजाओं का विचार; १४. मिलकर आक्रमण; १५. परिपणित, अपरिपणित और अपसृत संधि; १६. द्वैधीभाव-सम्बन्धी सन्धि और विक्रम; १७. यातव्य-सम्बन्धी व्यवहार; १८. अनुग्राह्य मित्रविशेष; १९. मित्रसंधि, हिरण्यसंधि, भूमिसंधि और कर्मसंधि; २०. पार्ष्णिग्राह-चिन्ता; २१. दुर्बल का शक्ति-संचय; २२. बलवान् से विरोध कर के दुर्ग-प्रवेश के कारण; २३. दंडोपनतवृत्त; २४. दंडोपनायिवृत्त; २५. सन्धिकर्म; २६. सन्धि-मोक्ष; २७. मध्यम का चरित; २८. उदासीन का चरित; और २९. राजमंडल का चरित ।

आठवाँ अधिकरण : व्यसनों का निरूपण

(१) १. प्रकृतियों के व्यसन; २. राजा और राज्य के व्यसनों पर विचार; ३. सामान्य पुरुषों के व्यसन; ४. पीडनवर्ग; ५. स्तम्भनवर्ग; ६. कोषसंगवर्ग; ७. बलव्यसनवर्ग और ८. मित्रव्यसनवर्ग ।

नवाँ अधिकरण : आक्रमण का निरूपण

(२) १. शक्ति, देश और काल के बलाबल का ज्ञान; २. आक्रमण का समय; ३. सेनाओं के तैयार होने का समय; ४. सैन्य-संगठन ५. शत्रुसेना से मुकाबला; ६. पश्चात्कोपचिन्ता; ७. बाह्य और आभ्यन्तर प्रकृति के कोप का प्रतीकार; ८. क्षय, व्यय और लाभ का विचार; ९. बाह्य और आभ्यन्तर आपत्तियाँ; १०. राजद्रोही

अर्थानर्थसंशययुक्ताः ॥ ११ ॥ तासामुपायविकल्पजाः सिद्धयः ॥ १२ ॥

इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम् ।

(१) स्कन्धावारनिवेशः ॥१॥ स्कन्धावारप्रयाणम् ॥२॥ बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम् ॥ ३ ॥ कूटयुद्धविकल्पाः ॥ ४ ॥ स्वसैन्योत्साहनम् ॥ ५ ॥ स्वबलान्यबलव्यायोगः ॥ ६ ॥ युद्धभूमयः ॥ ७ ॥ पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि ॥ ८ ॥ पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः ॥ ९ ॥ सारफल्गुबलविभागः ॥ १० ॥ पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि ॥ ११ ॥ दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम् ॥ १२ ॥ तस्य प्रतिव्यूहसंस्थापनम् ॥ १३ ॥

इति साङ्ग्रामिकं दशममधिकरणम् ।

(२) भेदोपादानानि ॥ १ ॥ उपांशुदण्डः ॥ २ ॥

इति सङ्घवृत्तमेकादशमधिकरणम् ।

(३) दूतकर्म ॥ १ ॥ मन्त्रयुद्धम् ॥ २ ॥ सेनामुख्यवधः ॥ ३ ॥ मण्डलप्रोत्साहनम् ॥ ४ ॥ शस्त्राग्निरसप्रणिधयः ॥ ५ ॥ विवधासारप्रसारवधः ॥ ६ ॥ योगातिसंधानम् ॥ ७ ॥ दण्डातिसंधानम् ॥ ८ ॥ एकविजयः ॥ ९ ॥

इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम् ।

और शत्रुजन्य आपत्तियाँ; ११. अर्थ, अनर्थ तथा संशयसंबंधी आपत्तियाँ; १२. उन आपत्तियों के प्रतीकारों के उपायों से प्राप्त होनेवाली सिद्धियाँ ।

दसवाँ अधिकरण : संग्राम का निरूपण

(१) १. छावनी का निर्माण; २. छावनी का प्रयाण; ३. आपत्ति एवं आक्रमण के समय सेना की रक्षा; ४. कूटयुद्ध के भेद; ५. अपनी सेना को प्रोत्साहन; ६. अपनी और पराई सेना का प्रयोग; ७. युद्ध के योग्य भूमि; ८. पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदि सेनाओं के कार्य; ९. पक्ष, कक्ष तथा उरस्य आदि विशेष व्यूहों का सेना के परिमाण के अनुसार व्यूहविभाग; १०. सार तथा फल्गु बलों का विभाग; ११. चतुरंग सेना का युद्ध; १२. दंडव्यूह, भोगव्यूह, मंडलव्यूह, असंगतव्यूह और उनके प्रकृतिव्यूह तथा विकृतिव्यूह की रचना; १३. उक्त दंडादि व्यूहों के प्रतिव्यूहों की रचना ।

ग्यारहवाँ अधिकरण : संघवृत्त-निरूपण

(२) १. भेदकप्रयोग; २. उपांशुदंड ।

बारहवाँ अधिकरण : आबलीयस का निरूपण

(३) १. दूतकर्म; २. मंत्रयुद्ध; ३ सेनापतियों का वध; ४. राजमंडल की सहायता; ५. शस्त्र, अग्नि और रथों का गूढ़ प्रयोग; ६. विवध, आसार और प्रसार का नाश; ७. योगातिसंधान; ८. दंडातिसंधान; ९. एकविजय ।

(१) उपजापः ॥ १ ॥ योगवानम् ॥ २ ॥ अपसर्पप्रणिधिः ॥ ३ ॥ पर्युपासनकर्म ॥ ४ ॥ अवमर्दः ॥ ५ ॥ लब्धप्रशमनम् ॥ ६ ॥

इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम् ।

(२) परघातप्रयोगः ॥ १ ॥ प्रलम्भनम् ॥ २ ॥ स्वबलोपघात-प्रतीकारः ॥ ३ ॥

इत्यौपनिषदं चतुर्दशमधिकरणम् ।

(३) तन्त्रयुक्तयः ॥ १ ॥

इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम् ।

(४) शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीतिप्रकरणशतं षट् श्लोकसहस्राणीति ।

(५) सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम् ।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥

इति प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः ।

तेरहवाँ अधिकरण : दुर्गप्राप्ति का निरूपण

(१) १. उपजाप; २. योगवामन; ३. गुप्तचरों का शत्रुदेश में निवास; ४. शत्रु के दुर्ग को घेरना; ५. शत्रु के दुर्ग को तोड़ना; ६. जीते हुए दुर्ग में शांति कायम करना ।

चौदहवाँ अधिकरण : औपनिषदिक-निरूपण

(२) १. शत्रुवध के प्रयोग; २. प्रलंभन योग; ३. शत्रुद्वारा अपनी सेना पर किये गए घातक प्रयोगों का प्रतीकार ।

पन्द्रहवाँ अधिकरण : तंत्रयुक्ति का निरूपण

(३) तंत्रयुक्तियाँ ।

(४) इस प्रकार सम्पूर्ण कौटिलीय अर्थशास्त्र में पन्द्रह अधिकरण; एक सौ पचास अध्याय; एक सौ अस्सी प्रकरण और छह हजार श्लोक हैं ।

[उक्त श्लोकसंख्या अक्षरों की गणना से दी गई है । बत्तीस अक्षरों का एक अनुष्टुप् छन्द होता है । यदि इस कौटिलीय अर्थशास्त्र के अक्षरों को अनुष्टुप् छन्द में बाँध दिया जाय तो छह हजार श्लोक बनते हैं ।]

(५) इस अर्थशास्त्र में तत्त्वार्थ और पदों का प्रयोग किया गया है । व्यर्थ विस्तार से यह ग्रन्थ सर्वथा मुक्त है । सरलमति बालक भी इस ग्रन्थ को सुखपूर्वक समझ सकते हैं । इस अर्थशास्त्र को कौटिल्य ने बनाया है ।

प्रकरण एवं अधिकरण का निरूपण समाप्त ।

प्रकरण १

अध्याय १

विद्यासमुद्देशः आन्वीक्षकीस्थापना

(१) आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।

(२) त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षकीति।

(३) वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः। संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति।

(४) दण्डनीतिरेका विद्येत्यौशनसाः। तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति।

(५) चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः। ताभिर्धर्माथौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्।

(६) साङ्ख्यं योगो लोकायतं चेत्यान्वीक्षकी। धर्माधर्मौ त्रय्यामर्थानर्थौ वार्तायां नयापनयौ दण्डनीत्याम्। बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा-

विद्या-विषयक विचार : आन्वीक्षकी

(१) आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति—ये चार विद्यायें हैं।

(२) मनु सम्प्रदाय के अनुयायी आचार्य त्रयी, वार्ता और दण्डनीति, इन तीन विद्याओं को मानते हैं। उनका मत है कि आन्वीक्षकी का समावेश त्रयी के अन्तर्गत हो जाता है।

(३) आचार्य बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् केवल दो ही विद्यायें मानते हैं : वार्ता और दण्डनीति। उनके मतानुसार त्रयी तो दुनियादार (लोकयात्राविद्) लोगों की आजीविका का साधन मात्र है।

(४) शुक्राचार्य के अनुयायी विद्वानों ने तो केवल दण्डनीति को ही विद्या माना है, और उसी को सम्पूर्ण विद्याओं का स्थान एवं कारण स्वीकार किया है।

(५) किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त चारों विद्याओं को मानते हैं और उनकी यथार्थता धर्म तथा अधर्म के ज्ञान में बताते हैं।

(६) सांख्य, योग और लोकायत (नास्तिक दर्शन), ये आन्वीक्षकी विद्या के अन्तर्गत हैं। इसी प्रकार त्रयी में धर्म-अधर्म का, वार्ता में अर्थ-अनर्थ का और दण्डनीति में सुशासन-दुःशासन का ज्ञान प्रतिपादित है। त्रयी आदि विद्याओं की प्रधानता-

न्वीक्षकी लोकस्योपकरोति; व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति; प्रज्ञा-वाक्यक्रियावैशारद्यं च करोति ।

(१) प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम् ।
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षकी मता ॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे
आन्वीक्षकीस्थापना नाम प्रथमोऽध्यायः ।

—: ० :—

अप्रधानता (बलाबल) को, भिन्न-भिन्न युक्तियों से, निर्धारित करती हुई आन्वीक्षकी विद्या लोक का उपकार करती है; सुख-दुःख से बुद्धि को स्थिर रखती है; और सोचने, विचारने, बोलने तथा कार्य करने में सक्षम बनाती है ।

(१) यह आन्वीक्षकी विद्या सर्वदा ही सब विद्याओं का प्रदीप, सभी कार्यों का साधन और सब धर्मों का आश्रय मानी गई है ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में पहला अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

त्रयीस्थापना

(१) सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि।

(२) एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः।

(३) स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च। वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च। शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च।

(४) गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च।

(५) ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा।

विद्या-विषयक विचार : त्रयी

(१) साम, ऋक् तथा यजु, इन तीनों वेदों का समन्वित नाम ही त्रयी (तीनों वेद) है। अथर्ववेद और इतिहासवेद ही वेद कहे जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति (विचिति=विचार, विवेक) और ज्योतिष, ये छह वेदांग हैं।

(२) त्रयी में निरूपित यह धर्म, चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म (कर्तव्य) में स्थिर रखने के कारण लोक का बहुत ही उपकारक है।

(३) ब्राह्मण का धर्म अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ-याजन और दान देना तथा दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म है पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, शस्त्रबल से जीविकोपार्जन करना और प्राणियों की रक्षा करना। वैश्य का धर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, कृषिकार्य एवं पशुपालन और व्यापार करना है। इसी प्रकार शूद्र का अपना धर्म है कि वह ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की सेवा करे; खेती, पशु-पालन तथा व्यापार करे; और शिल्प (कारीगरी), गायन, वादन एवं चारण, भाट आदि का कार्य करे।

(४) गृहस्थ अपनी परम्परा के अनुकूल कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करे; सगोत्र तथा असगोत्र समाज में विवाह करे; ऋतुगामी हो; देव, पितर, अतिथि और भृत्यजनों को देकर सबसे अन्त में भोजन करे।

(५) ब्रह्मचारी का धर्म है कि वह नियमित स्वाध्याय करे; अग्निहोत्र रचे; नित्य

(१) वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः ।

(२) परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किञ्चनत्वं सङ्गत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्यवासो बाह्याभ्यन्तरं च शौचम् ।

(३) सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयाऽऽनृशंस्यं क्षमा च ।

(४) स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च । तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत ।

(५) तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत् ।
स्वधर्मं संदधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥

(६) व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः ।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकारणे विद्यासमुद्देशे त्रयीस्थापना द्वितीयोऽध्यायः ।

—: ० :—

स्नान करे; भिक्षाटन करे; जीवनपर्यन्त गुरु के समीप रहे; गुरु की अनुपस्थिति में गुरुपुत्र अथवा अपने किसी समान शाखाध्यायी के निकट रहे ।

(१) वानप्रस्थी का धर्म है : ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना; भूमि पर शयन करना; जटा, मृगचर्म को धारण किये रहना; अग्निहोत्र तथा प्रतिदिन स्नान करना; देव, पितर एवं अभ्यागतों की सेवा-पूजा करना और वन के कन्द-मूल-फल पर निर्वाह करना ।

(२) संन्यासी का धर्म है : जितेन्द्रिय होना; वह किसी भी सांसारिक कार्य को न करे; निष्किचन बना रहे; एकाकी रहे; प्राणरक्षा मात्र के लिए स्वल्प आहार करे; समाज में न रहे; जंगल में भी एक ही स्थान पर न रहता रहे; मन, वचन, कर्म से अपना भीतर तथा बाहर पवित्र रखे ।

(३) प्रत्येक वर्ण और प्रत्येक आश्रम का धर्म है कि वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करे; सत्य बोले; पवित्र बना रहे; किसी से ईर्ष्या न करे; दयावान् और क्षमाशील बना रहे ।

(४) अपने धर्म का पालन करने से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है । उसका पालन न करने से वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है ।

(५) इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को धर्म और कर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे । अपनी प्रजा को धर्म और कर्म में प्रवृत्त रखने वाला राजा लोक और परलोक में सुखी रहता है ।

(६) पवित्र आर्यमर्यादा में अवस्थित, वर्णाश्रमधर्म में नियमित और त्रयी धर्म से रक्षित प्रजा दुखी नहीं होती, सदा सुखी रहती है ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दूसरा अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १

अध्याय ३

वार्तादण्डनीतिस्थापना

(१) कृषिपाशुपाल्ये वाणिज्या च वार्ता। धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टि-प्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति कोशदण्डाभ्याम्।

(२) आन्वीक्षकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः। तस्य नीति-र्दण्डनीतिः। अलब्धलाभार्था; लब्धपरिरक्षणी; रक्षितविवर्धनी; वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च।

(३) तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदण्डः स्यात्। न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दण्ड इत्याचार्याः।

(४) नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः। मृदुदण्डः परिभूयते। यथार्हदण्डः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थ-कामैर्योजयति।

विद्या-विषयक विचार : वार्ता और दण्डनीति

(१) कृषि, पशुपालन और व्यापार, ये वार्ताविद्या के विषय हैं। यह विद्या, धान्य, पशु, हिरण्य, ताम्र आदि खनिज पदार्थ और नौकर-चाकर आदि की देने वाली परम उपकारिणी है। इसी विद्या से उपार्जित कोश और सेना के बल पर राजा स्वपक्ष तथा परपक्ष को वश में कर लेता है।

(२) आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन सभी विद्याओं की सुख-समृद्धि दण्ड पर निर्भर है। दण्ड (शासन) को प्रतिपादित करने वाली नीति ही दण्डनीति कह-लाती है। वही अप्राप्त वस्तुओं को प्राप्त कराती है; प्राप्त वस्तुओं की रक्षा करती है; रक्षित वस्तुओं की वृद्धि करती है और वही संवर्द्धित वस्तुओं को समुचित कार्यों में लगाने का निर्देश करती है। उसी पर संसार की सारी लोकयात्रा निर्भर है। इस-लिए लोक को समुचित मार्ग पर ले चलने की इच्छा रखने वाला राजा सदा ही उद्यतदण्ड (दण्ड देने के लिए प्रस्तुत) रहे।

(३) पुरातन आचार्यों का अभिमत है कि 'दण्ड के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है, जिससे सभी प्राणियों को सहज ही वश में किया जा सके'।

(४) किन्तु आचार्य कौटिल्य इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'कठोर दण्ड देने वाले राजा (निष्ठुर शासक) से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते

(१) दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान्। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवतीति।

(२) चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे विद्यासमुद्देशे
वार्त्तास्थापना दण्डनीतिस्थापना च तृतीयोऽध्यायः।

—: ० :—

हैं; किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी लोक, राजा की अवहेलना करने लगता है। इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए।'

(१) भली भाँति सोच-समझ कर प्रयुक्त दण्ड प्रजा को धर्म, अर्थ और काम में प्रवृत्त करता है। काम-क्रोध के वशीभूत होकर अज्ञानतापूर्वक अनुचित रीति से प्रयुक्त किया हुआ दण्ड, वानप्रस्थ और परिव्राजक जैसे निःस्पृह व्यक्तियों को भी कुपित कर देता है; फिर गृहस्थलोगों पर ऐसे दण्ड की क्या प्रतिक्रिया होगी, सोचा ही नहीं जा सकता है ! इसके विपरीत, यदि दण्ड से व्यवस्था सर्वथा ही तोड़ दी जाय तो उसका कुप्रभाव यह होगा कि जैसे छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है, वैसे ही बलवान् व्यक्ति, निर्बल व्यक्ति का रहना दूभर कर देगा। दण्ड-व्यवस्था के अभाव में सर्वत्र ही अराजकता फैल जाती है और निर्बल को बलवान् सताने लगता है; किन्तु दण्डधारी राजा से रक्षित दुर्बल भी बलवान् बना रहता है।

(२) राजाकी दण्ड-व्यवस्था से रक्षित चारों वर्ण-आश्रम, सारा लोक, अपने-अपने धर्मकर्मों में प्रवृत्त होकर निरन्तर अपनी-अपनी मर्यादा पर बने रहते हैं।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में तीसरा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण २

अध्याय ४

वृद्ध-संयोगः

(१) तस्माद्दण्डमूलास्तिस्त्रो विद्याः। विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः।

(२) कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः। क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्।

(३) विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च।

(४) वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत। वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षकीं च शिष्टेभ्यः, वार्तामध्यक्षेभ्यः, दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः।

(५) ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म च। अस्य नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं तन्मूलत्वाद्विनयस्य।

वृद्धजनों की संगति

(१) यही कारण है कि आन्वीक्षकी, त्रयी और वार्ता, इन तीनों विद्याओं का अस्तित्व दण्डनीति पर आधारित है। शास्त्रविहित उचित रीति से प्रयुक्त दण्ड प्रजा के योगक्षेम का साधक होता है।

(२) विनय (शिक्षा) दो प्रकार का होता है: १. कृतक (कृत्रिम, बनावटी, नैमित्तिक) और २. स्वाभाविक (स्वतःसिद्ध)। शिक्षा सुपात्र को ही योग्य बना सकती है, अपात्र को नहीं। विद्या से वही योग्य हो सकते हैं, जो कि शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहापोह (तर्क-वितर्क) में विवेक तथा बुद्धि से काम लेते हैं।

(३) विभिन्न विद्याओं के विभिन्न आचार्यों के मतानुसार ही शिष्य का शिक्षण और नियमन होना चाहिए।

(४) मुण्डन-संस्कार के बाद वर्णमाला और अङ्कमाला का अभ्यास करे। उपनयन के बाद सदाचारशील विद्वान् आचार्यों से त्रयी तथा आन्वीक्षकी, विभागीय अध्यक्षों से वार्ता और वक्ता-प्रयोक्ता विशेषज्ञों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव आदि के आचार्यों) से दण्डनीति की शिक्षा ग्रहण करे।

(५) सोलह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करे। तदनन्तर समावर्तन संस्कार (केशान्त कर्म) और विवाह करे। विवाह के बाद अपने विनय (शिक्षा) की वृद्धि

(१) पूर्वमह्नर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्। पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहणं गृहीतपरिचयं च कुर्यात्। अगृहीतानामाभीक्ष्ण्यश्रवणं च।

(२) श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते; प्रज्ञाया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम्।

(३) विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुङ्क्ते सर्वभूतहिते रतः॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
वृद्धसंयोगः चतुर्थोऽध्यायः।

—: ० :—

के लिए सदा ही विद्यावृद्ध पुरुषों का सहवास करे, क्योंकि सारा विनय उन्हीं पर निर्भर है।

(१) दिन का पहिला भाग हाथी, घोड़ा, रथ, अस्त्र-शस्त्र आदि विद्याओं की शिक्षा में बिताये। दिन के दूसरे भाग को इतिहास सुनने में लगाये। पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण (मीमांसा), धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र, ये सभी विषय इतिहास हैं। दिन और रात के बाकी बचे समय में नये ज्ञान का अर्जन और अधीत ज्ञान का मनन-चिन्तन करे। जो विषय एक बार सुनने में बुद्धिस्थ न हो सके, उसको बार-बार सुने।

(२) क्योंकि शास्त्र-श्रवण से बुद्धि का विकास होता है; उससे योगशास्त्रों में रुचि और योग से आत्मबल प्राप्त होता है। यही विद्या का सुपरिणाम है।

(३) जो विद्वान् राजा प्राणिमात्र की हितकामना में लगा रहता है और प्रजा के शासन तथा शिक्षण में तत्पर रहता है, वह चिरकाल तक पृथिवी का निर्बाध शासन करता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में चौथा अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ३

अध्याय ५

इन्द्रिय-जयः अरिषड्वर्गत्यागः

(१) विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः; कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः। कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः।

(२) शास्त्रार्थानुष्ठानं वा। कृत्स्नं हि शास्त्रमिदमिन्द्रियजयः। तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति। यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद् ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। करालश्च वैदेहः। कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तस्तालजङ्घश्च भृगुषु। लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः सौवीरश्चाजबिन्दुः। मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्। दुर्योधनो राज्यादंशं च। मदाद् डम्भोद्भवो भूताव-

काम-क्रोधादि छह शत्रुओं का परित्याग

(१) विद्या और विनय का हेतु इन्द्रियजय है; अतः काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष के त्याग से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नासिका को उनके विषयों: शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध में प्रवृत्त न होने देना ही इन्द्रियजय कहलाता है।

(२) अथवा शास्त्रों में प्रतिपादित कर्तव्यों के सम्यक् अनुष्ठान को ही इन्द्रियजय कहते हैं। सारे शास्त्रों का मूल कारण इन्द्रियजय है। शास्त्रविहित कर्तव्यों के विपरीत आचरण करने वाला इन्द्रिय-लोलुप राजा सारी पृथिवी का अधिपति होता हुआ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। उदाहरणस्वरूप भोजवंशीय दाण्डक्य नामक राजा कामवश ब्राह्मणकन्या का अपहरण करने के अपराध में, उसके पिता के शाप से, सपरिवार एवं सराष्ट्र विनष्ट हो गया। यही गति विदेह देश के राजा कराल की भी हुई। क्रोधवश राजा जनमेजय भी ब्राह्मणों से कलह कर बैठा और वह भी उनके शाप से नष्ट हो गया। इसी प्रकार भृगुवंशियों से कलह करने पर तालजंघ की भी दुर्गति हुई। लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरूरवा, चारों वर्णों से अत्याचारपूर्वक धन का अपहरण करने के कारण, उनके अभिशाप से मारा गया। यही हाल सौवीर देश के राजा अजबिन्दु का भी हुआ। अभिमानी रावण पर-पत्नी के अपहरण के अपराध से और दुर्योधन अपने भाइयों को राज्य का भाग न देने के अन्याय से मारे

मानी हैहयश्चार्जुनः। हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्वृष्णिसंघश्च द्वैपायनमिति।

(१) एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः॥
शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः॥
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम्॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमेऽधिकरणे इन्द्रियजये अरिषड्वर्गत्यागः पञ्चमोऽध्यायः।

—: ० :—

गये। मदोन्मत्त राजा डम्भोद्भव अपनी प्रजा का तिरस्कार करता रहा; अन्त में नर-नारायण के साथ युद्ध करते हुए वह भी विनाश को प्राप्त हुआ। इसी कारण हैहयराज अर्जुन, परशुराम के हाथ से मारा गया। हर्ष के वशीभूत होकर वातापि नाम का असुर, अगस्त्य ऋषि के साथ प्रवञ्चना करते हुए और यादवसंघ, द्वैपायन ऋषि के साथ कपट के अपराध में शापवश मृत्युमुख में जा पहुँचे।

(१) कामादि छह शत्रुओं के वश में होकर, ऊपर गिनाये गए राजाओं के अतिरिक्त दूसरे भी बहुत से राजा, सबन्धु-बान्धव एवं सराज्य नष्ट हो गये। किन्तु जामदग्न्य (परशुराम), अम्बरीष और नाभाग (नभाग का पुत्र) जैसे जितेन्द्रिय राजाओं ने चिरकाल तक इस पृथिवी का निष्कण्टक राज्य भोगा।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

राजर्षिवृत्तम्

(१) तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं, विनयं विद्योपदेशेन, लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन, हितेन वृत्तिम्।

(२) एवं वश्येन्द्रियः परस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्। स्वप्नं लौल्यमनृतमुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च; अधर्मसंयुक्तमानर्थसंयुक्तं च व्यवहारम्।

(३) धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत। न निःसुखः स्यात्। समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धम्। एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति।

साधु-स्वभाव राजा की जीवनचर्या

(१) इसलिए, काम-क्रोधादि छहों शत्रुओं का सर्वथा परित्याग करके इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। विद्वान् पुरुषों की सङ्गति में रहकर बुद्धि का विकास करे। गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र के वृत्तान्त को अवगत करे। उद्योग के द्वारा राज्य के योग-क्षेम का सम्पादन करे। राजकीय नियमों द्वारा अपने-अपने धर्म पर दृढ़ बने रहने के लिए प्रजा पर नियन्त्रण रखे। शिक्षा के प्रचार-प्रसार से प्रजा को विनम्र और शिक्षित बनावे। प्रजाजनों को धन-सम्मान प्रदान कर अपनी लोकप्रियता को बनाये रखे। दूसरों का हित करने में उत्सुक रहे।

(२) इस प्रकार इन्द्रियों को वश में रखता हुआ वह (राजा) पराई स्त्री, पराया धन और हिंसाप्रवृति को सर्वथा त्याग दे। कुसमय शयन करना, चञ्चलता, झूठ बोलना, अविनीत वृत्ति बनाये रखना, इस प्रकार के आचरणों को और इस प्रकार के आचरण वाले लोगों की सङ्गति को वह छोड़ दे। उसको चाहिए कि वह अधर्माचरण और अनर्थकारी व्यवहार का भी परित्याग कर दे।

(३) काम का भी वह सेवन करे; किन्तु उससे धर्म और अर्थ को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। सर्वथा सुखरहित जीवन-यापन न करे। परस्पर अनुबद्ध धर्म, अर्थ और काम, इस त्रिवर्ग का सन्तुलित उपभोग करे। इस त्रिवर्ग का असन्तुलित उपभोग बड़ा दुःखदायी सिद्ध होता है।

(१) अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः; अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति।

(२) मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान् वा। य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः। छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः।

(३) सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे इन्द्रियजये
राजर्षिवृत्तं षष्ठोऽध्यायः।

—: ० :—

---

(१) आचार्य कौटिल्य का अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ और काम, इन तीनों में अर्थ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर हैं'।

(२) गुरुजन और अमात्यवर्ग राजा की मर्यादा को निर्धारित करें। वे ही राजा को अनर्थकारी कार्यों से रोकते रहें। यदि वह एकान्त में प्रमाद करता हुआ बेसुध हो तो समय-सूचक यन्त्र द्वारा अथवा घंटा आदि बजाकर उसको उद्‌बुद्ध करें।

(३) एक पहिये की गाड़ी की भाँति राजकाज भी बिना सहायता-सहयोग से नहीं चलाया जा सकता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह सुयोग्य अमात्यों की नियुक्ति कर उनके परामर्शों को हृदयंगम करे।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में छठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ३

अध्याय ७

अमात्यनियुक्तिः

(१) सहाध्यायिनोऽमात्यान् कुर्वीत, दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः। ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति।

(२) नेति विशालाक्षः। सहक्रीडितत्वात् परिभवन्त्येनम्। ये ह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान् कुर्वीत, समानशीलव्यसनत्वात्। ते ह्यस्य मर्मज्ञभयान्नापराध्यन्तीति।

(३) साधारण एष दोष इति पराशरः। तेषामपि मर्मज्ञभयाकृताकृतान्यनुवर्तेत।

(४) यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम्॥

अमात्यों की नियुक्ति

(१) आचार्य भारद्वाज का अभिमत है कि 'राजा, अपने सहपाठियों को अमात्य पद पर नियुक्त करे; क्योंकि उनके हृदय की पवित्रता से वह सुपरिचित होता है; उनकी कार्यक्षमता को भी वह जान चुका होता है। ऐसे ही अमात्य राजा के विश्वासपात्र होते हैं'।

(२) आचार्य विशालाक्ष का कहना है कि 'ऐसा उचित नहीं। एक साथ खेलने, तथा उठने-बैठने के कारण सहपाठी अमात्य राजा का तिरस्कार कर सकते हैं। इसलिए अमात्य उनको बनाना चाहिए जो कि गुप्तकार्यों में राजा का साथ देते रहे हों। समान शील और समान व्यसन होने के कारण ऐसे लोग गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से, राजा का अपमान नहीं करते हैं'।

(३) आचार्य पराशर के मत से आचार्य विशालाक्ष की युक्तियाँ दोषपूर्ण हैं। पराशर का कहना है कि यह बात तो दोनों ही पक्षों पर एक समान चरितार्थ होती है। ऐसा करने से यह भी तो संभव है कि गुप्त बातों का भेद खुल जाने के भय से राजा ही अमात्य की कठपुतली बन जाय! क्योंकि :

(४) राजा जिन लोगों से जितना ही अपनी गुप्त बातें प्रकट करता है, उतना ही शक्ति से क्षीण होकर वह उनके वश में हो जाता है।

(१) य एनमापत्सु प्राणाबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टानुरागत्वादिति ।

(२) नेति पिशुनः । भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः । संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथादिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टगुणत्वादिति ।

(३) नेति कौणपदन्तः । अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते । पितृपैतामहानमात्यान् कुर्वीत, दृष्टापदानत्वात् । ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति, सगन्धत्वात् । अमानुषेष्वपि चैतद् दृश्यते—गावो ह्यसगन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्ते इति ।

(४) नेति वातव्याधिः । ते ह्यस्य सर्वमपगृह्य स्वामिवत् प्रचरन्तीति । तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान् कुर्वीत । नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ।

---

(१) इसलिए जो पुरुष राजा की प्राणघातक आपत्तियों में रक्षा करें, उनको अमात्य नियुक्त करना चाहिए । उनके अनुराग की परीक्षा राजा कर चुका होता है ।

(२) आचार्य पिशुन इसको भक्ति कहते हैं । उनका कहना है कि 'प्राणों की चिन्ता न करके राजा की सहायता करना भक्ति है, सेवाधर्म है; वह बुद्धि का प्रमाण नहीं; जो कि अमात्य का सर्वोच्च गुण है । इसलिए अमात्य पद पर उन्हीं को नियुक्त करना चाहिए जो कि विशिष्ट राजकीय कार्यों पर नियुक्त होकर अपने कार्यों को विशेष योग्यता के साथ संपन्न करके दिखा दें, क्योंकि इस ढंग पर उनके बुद्धि-वैशिष्ट्य की परीक्षा हो जाती है' ।

(३) आचार्य कौणपदन्त उक्त मत को नहीं मानते । उनका कहना है कि 'ऐसे लोग अमात्योचित गुणों से शून्य होते हैं । अमात्यपद जिनको वंश-परम्परा से उपलब्ध रहा हो, उन्हीं को इस पद पर नियुक्त करना चाहिए । वे ही उसकी सम्पूर्ण रीति-नीति से सुपरिचित होते हैं । यही कारण है कि वे अपना अपकार होने पर भी, परम्परागत सम्बन्ध के कारण राजा को नहीं छोड़ते । यह बात पशु-पक्षियों तक में देखी जाती है : गाय, अपरिचित गोष्ठ को छोड़कर परिचित गोष्ठ में ही जाकर ठहरती है' ।

(४) आचार्य वातव्याधि, आचार्य कौणपदन्त के अभिमत के समर्थक नहीं हैं । उनकी मान्यता है कि 'इस प्रकार के अमात्य; राजा के सर्वस्व को अपने अधीन करके, राजा के समान स्वतन्त्र वृत्ति वाले हो जाते हैं । इसलिए नीतिकुशल राजा नये व्यक्तियों को ही अमात्य नियुक्त करे । नये अमात्य, दण्डधारी राजा को यम का दूसरा अवतार समझ कर, उसकी कभी भी अवमानना नहीं करते हैं ।'

(१) नेति बाहुदन्तीपुत्रः। शास्त्रविददृष्टकर्मा कर्मसु विषादं गच्छेत्। अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान् कुर्वीत, गुणप्राधान्यादिति।

(२) सर्वमुपपन्नमिति कौटिल्यः। कार्यसामर्थ्याद्धि पुरुषसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च।

(३) विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मन्त्रिणः॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाऽधिकरणेऽमात्योत्पत्तिनामकः सप्तमोऽध्यायः।

—: ० :—

---

(१) आचार्य बाहुदन्तीपुत्र (इन्द्र) के मत से यह भी ठीक नहीं है। वे कहते हैं 'नीतिशास्त्रपारंगत, किन्तु क्रियात्मक अनुभव से शून्य व्यक्ति राजकार्यों को नहीं कर सकता है। इसलिए जो लोग कुलीन, बुद्धिमान, विश्वासपात्र, वीर और राज-भक्त हों, उनको अमात्य पद पर नियुक्त करना चाहिए। उनमें गुणों की प्रधानता होती है।'

(२) आचार्य कौटिल्य के मतानुसार, भारद्वाज से लेकर बाहुदन्तीपुत्र तक की विचार-परम्परा, अपने-अपने स्थान पर ठीक है। 'किसी भी पुरुष के सामर्थ्य की स्थिति उसके कार्यों की सफलता पर निर्भर है, और उसकी यह कार्यक्षमता उसकी विद्या-बुद्धि के बल पर ही आँकी जा सकती है।' इसलिए :

(३) राजा को चाहिए कि वह सहपाठी आदि की भी सर्वथा अवहेलना न करे। उसके लिए वह परमावश्यक है कि वह विद्या, बुद्धि, साहस, गुण, दोष, देश, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्ति करे; किन्तु उन्हें अपना मन्त्री कदापि न बनाये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में सातवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

मन्त्रि-पुरोहितयोर्नियुक्तिः

(१) जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान् प्राज्ञो धारयिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तः क्लेशसहः शुचिर्मैत्रो दृढभक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्यवर्जितः संप्रियो वैराणामकर्तेत्यमात्यसंपत् । अतः पादार्धगुणहीनौ मध्यमावरौ ।

(२) तेषां जनपदमवग्रहं चाप्यतः परीक्षेत, समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च; कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च; कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानवत्त्वं च; आपद्युत्साहप्रभावौ क्लेशसहत्वं च; संव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च; संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भमचापल्यं च; प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च ।

मन्त्री और पुरोहित की नियुक्ति

मन्त्री की योग्यता :

(१) स्वदेशोत्पन्न, कुलीन, अवगुणशून्य, निपुण सवार एवं ललितकलाओं का ज्ञाता, अर्थशास्त्र का विद्वान्, बुद्धिमान्, स्मरणशक्तिसम्पन्न, चतुर, वाक्पटु, प्रगल्भ (दबंग), प्रतिवाद तथा प्रतिकार करने में समर्थ, उत्साही, प्रभावशाली, सहिष्णु, पवित्र, मित्रता के योग्य, दृढ़, स्वामिभक्त, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान्, निरभिमानी, स्थिरप्रकृति, प्रियदर्शी और द्वेषवृत्तिरहित पुरुष प्रधानमन्त्री पद के योग्य है। जिनमें इसके एक-चौथाई या आधी योग्यताएँ हों उन्हें मध्यम या निकृष्ट मन्त्री समझना चाहिए ।

(२) मन्त्री नियुक्त करने से पूर्व राजा को चाहिए कि वह प्रामाणिक, सत्यवादी एवं आप्त पुरुषों के द्वारा उनके निवासस्थान तथा उनकी आर्थिक स्थिति का; सहपाठियों के माध्यम से उनकी योग्यता तथा शास्त्रप्रवेश का; नये-नये कार्यों में नियुक्त कर उनकी बुद्धि, स्मृति तथा चतुराई का; व्याख्यानों एवं सभाओं के माध्यम से उनकी वाक्पटुता, प्रगल्भता एवं प्रतिभा का; आपत्तियों से उनके उत्साह, प्रभाव तथा सहिष्णुता का; व्यवहार से उनकी पवित्रता, मित्रता एवं दृढ़ स्वामिभक्ति का; सहवासियों एवं पड़ोसियों के माध्यम से उनके शील, बल, स्वास्थ्य, गौरव, अप्रमाद तथा स्थिरवृत्ति का पता लगाये और उनके मधुरभाषी स्वभाव तथा द्वेषरहित प्रकृति की परीक्षा स्वयं राजा करे ।

(१) प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षं, परोपदिष्टं परोक्षं, कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम्। यौगपद्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थत्वाच्च देशकालात्ययो मा भूदिति परोक्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म।

(२) पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां चाभिविनीतमापदां दैवमानुषीणाम् अथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। तमाचार्यं शिष्यः, पितरं पुत्रो, भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत।

(३) ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम्।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगतशस्त्रितम्॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे मन्त्रिपुरोहितयोर्नियुक्तिर्नामाष्टमोऽध्यायः।

—: ० :—

---

(१) प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय, राजा के व्यवहार की ये तीन विधियाँ हैं। स्वयं देखा हुआ प्रत्यक्ष, दूसरों के माध्यम से जाना हुआ परोक्ष और सम्पादित कार्यों से किये जाने वाले कार्यों का अनुमान करना ही अनुमेय कहलाता है। कार्यों की विधियाँ और उनके विधान एक जैसे नहीं हैं। राजा उन कार्यों को अकेला नहीं कर सकता है। जिससे कार्यों के सम्पादन में देश-काल का अतिक्रमण न हो, एतदर्थ, अमात्यों के द्वारा परोक्षरूप से राजा उन कार्यों को कराये। इसी हेतु अमात्यों की नियुक्ति और परीक्षा के लिए ऊपर वैसा विधान किया गया है।

पुरोहित की योग्यता :

(२) उच्चकुलोत्पन्न; शील-गुणसम्पन्न; वेद-वेदाङ्गों का ज्ञाता; ज्योतिषशास्त्र, शकुनशास्त्र, दण्डनीति में पारङ्गत; अथर्ववेद में निर्दिष्ट उपायों द्वारा दैवी तथा मानुषी विपत्तियों का प्रतिकार करने वाला; इन योग्यताओं से सम्पन्न पुरोहित को नियुक्त करना चाहिए। जैसे आचार्य के पीछे शिष्य, पिता के पीछे पुत्र और स्वामी के पीछे भृत्य चलता है, वैसे ही राजा को पुरोहित का अनुगामी होना चाहिए।

(३) इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित से संवर्धित, सर्वगुणसम्पन्न योग्य मन्त्रियों के परामर्श से अभिरक्षित और शास्त्रोक्त अनुष्ठानों का आचरण करने वाला राजकुल युद्ध के बिना भी अजेय एवं अलभ्य वस्तुओं को सहज ही में स्वायत्त कर लेता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में आठवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ५

अध्याय ९

उपधाभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम्

(१) मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वाऽमात्यानुपधाभिः शोधयेत् ।

(२) पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजावक्षिपेत् । सत्रिभिः शपथपूर्वमेकैकममात्यमुपजापयेत्—अधार्मिकोऽयं राजा, साधु धार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्धं कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः । सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ।

(३) सेनापतिरसत्प्रतिग्रहणावक्षिप्तः सत्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय—सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा ।

गुप्त उपायों से अमात्यों के आचरणों की परीक्षा

(१) सामान्य पदों पर अमात्यों की नियुक्ति करके, मन्त्री और पुरोहित के सहयोग से राजा, गुप्त उपायों के द्वारा उनके आचरणों की परीक्षा करे ।

(२) धर्मोपधा से राजा, पुरोहित को किसी नीच जाति के यहाँ यज्ञ करने तथा पढ़ाने के लिए नियुक्त करे । जब पुरोहित इस कार्य के लिए निषेध करे तो राजा उसको उसके पद से च्युत कर दे । वह पदच्युत पुरोहित गुप्तचर स्त्री-पुरुषों के माध्यम से शपथपूर्वक प्रत्येक अमात्य को राजा से भिन्न कराये । वह कहे 'यह राजा बड़ा अधार्मिक है । हमें चाहिए कि उसके स्थान पर, उसके ही वंशज किसी श्रेष्ठ पुरुष को, किसी धार्मिक व्यक्ति को, समीप के किसी सामन्त को, अथवा किसी जंगल के स्वामी को, या जिसको भी एकमत होकर हम निश्चित कर लें, उसको, नियुक्त करें । मेरे इस प्रस्ताव को सब ने स्वीकार कर लिया है । बताओ, तुम्हारी क्या राय है ?' पुरोहित की यह बात सुनकर यदि अमात्य उसको स्वीकार न करे तो उसे पवित्र हृदय वाला समझना चाहिए । गुप्त धार्मिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को 'धर्मोपधा' कहते हैं ।

(३) अर्थोपधा से राजा, किसी निन्दनीय या अपूज्य व्यक्ति का सत्कार करने के लिए, सेनापति को आदेश दे । राजा की इस बात से जब सेनापति रुष्ट हो जाय

(१) परिव्राजिका लब्धविश्वासान्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजपेत्—राजमहिषी त्वां कामयते। कृतसमागमोपाया महानर्थश्चते भविष्यतीति। प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा।

(२) प्रवहणनिमित्तमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत्। तेनोद्वेगेन राजा तानवरुन्ध्यात्। कापटिकच्छात्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत्—असत्प्रवृत्तोऽयं राजा, सहसैनं हत्वाऽन्यं प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते, कथं वा तवेति ? प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा।

(३) तत्र धर्मोपधाशुद्धान् धर्मस्थीयकण्टकशोधनेषु स्थापयेत्, अर्थो-

---

तो राजा उसको भी पदच्युत कर दे। वह पदच्युत अपमानित सेनापति गुप्तभेदियों द्वारा अमात्य को धन का प्रलोभन देकर उसे पूर्वोक्त विधि से राजा के विनाश के लिए उकसाये। वह कहे 'मेरी इस युक्ति को सभी ने स्वीकार कर लिया है। बताओ, तुम्हारी क्या सम्मति है ?' सेनापति की यह बात सुनकर अमात्य यदि उसका विरोध करे तो समझ लेना चाहिए कि वह पवित्र हृदय वाला है। गुप्त आर्थिक उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'अर्थोपधा' कहते हैं।

(१) कामोपधा से राजा किसी सन्यासिनी का वेष धारण करने वाली विशेष गुप्तचर स्त्री को अन्तःपुर में ले जाकर उसका अच्छा स्वागत-सत्कार करे और फिर वह एक-एक अमात्य के निकट जाकर कहे 'महामात्य, महारानी जी आप पर आसक्त हैं। आपके समागम के लिए उन्होंने पूरी व्यवस्था कर दी है। इससे आपको यथेष्ट धन भी प्राप्त होगा।' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसे पवित्रचित्त समझना चाहिए। गुप्त कामसम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य के हृदय की पवित्रता की परीक्षा को ही 'कामोपधा' कहते हैं।

(२) भयोपधा से नौका-विहार के लिए एक अमात्य दूसरे अमात्यों को बुलाये; इस प्रस्ताव पर राजा उत्तेजित होकर उन सब को दण्डित कर दे। तदनन्तर राजा द्वारा पहले अपकृत हुआ कपट-वेषधारी छात्र (छात्र के वेश में गुप्तचर) उस तिरस्कृत एवं दण्डित अमात्य के निकट जाकर उससे कहे 'यह राजा बहुत ही बुरा है। इसका वध करके हम किसी दूसरे राजा को उसके स्थान पर नियुक्त करें। सभी अमात्यों को यह स्वीकृत है। कहिए, आपकी क्या राय है ?' अमात्य यदि उसका विरोध करे तो उसको शुचिचित्त समझना चाहिए। गुप्तभय सम्बन्धी उपायों द्वारा अमात्य की शुचिता की परीक्षा को ही 'भयोपधा' कहते हैं।

परीक्षित अमात्यों की नियुक्ति

(३) जो अमात्य धर्मपरीक्षा में खरे उतरें उन्हें धर्मस्थानीय (दीवानी कचहरी)

पधाशुद्धान् समाहर्तृसन्निधातृनिचयकर्मसु, कामोपधाशुद्धान् बाह्याभ्यन्तर-विहाररक्षासु, भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः । सर्वोपधाशुद्धान् मन्त्रिणः कुर्यात् । सर्वत्राशुचीन् खनिद्रव्यहस्तिवनकर्मान्तेषूपयोजयेत् ।

(१) त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान् स्वेषु कर्मसु ।
अधिकुर्याद् यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ।।

(२) न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।
शौचहेतोरमात्यानामेतत् कौटिल्यदर्शनम् ।।

(३) न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत् ।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ।।

(४) कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।
नागत्वाऽन्तर्निवर्तेत स्थिता सत्त्ववतां धृतौ ।।

तथा कण्टकशोधन (फौजदारी कचहरी) सम्बन्धी कार्यों में नियुक्त करना चाहिए । अर्थपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को समाहर्ता (टैक्स कलक्टर) तथा सन्निधाता (कोषाध्यक्ष) के पदों पर रखना चाहिए । कामोपधा में परीक्षित अमात्यों को बाहरी विलास-स्थानों (विहारों) तथा भीतरी अन्तःपुर-सम्बन्धी रक्षा का व्यवस्था-भार सौंपना चाहिए । भयपरीक्षा में उत्तीर्ण अमात्यों को राजा अपना अङ्गरक्षक नियुक्त करे । इनके अतिरिक्त जो अमात्य सभी परीक्षाओं में खरे उतरे हों उन्हें मन्त्रिपद पर नियुक्त किया जाना चाहिए; और सभी परीक्षाओं में असफल अमात्यों को खदानों, हाथियों और जङ्गलों आदि की परिश्रम-साध्य व्यवस्था का भार सौंपना चाहिए ।

(१) सभी पुरातन अर्थशास्त्रविद् आचार्यों का यही अभिमत है कि 'धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को, उनकी कार्यक्षमता के अनुसार कार्यभार सौंपना चाहिए ।'

(२) किन्तु, इस सम्बन्ध में आचार्य कौटिल्य का एक संशोधन यह है कि 'अमात्यों की परीक्षा अवश्य ली जाय; पर उस परीक्षा का माध्यम राजा अपने को तथा रानी को न बनाये ।

(३) क्योंकि कभी-कभी किसी निर्दोष अमात्य को छल-प्रपञ्चयुक्त इन गुप्त-रीतियों से ठगा जाना, पानी में विष घोल देने के समान हो जाता है । सम्भव हो सकता है कि उक्त रीतियों से बिगड़ा हुआ अमात्य फिर कभी भी सुधर न सके । क्योंकि :

(४) छल-छद्म जैसे कपट उपायों के द्वारा ठगे गये चरित्रवान पुरुष की बुद्धि

(१) **तस्माद् बाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे ।**
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्त्रिभिः ।।

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे उपधाभिः शौचाशौच-
ज्ञानममात्यानां नवमोऽध्यायः ।

—: ० :—

तब तक चैन नहीं लेती, जब तक उसने अभीष्ट को प्राप्त न कर लिया हो (अर्थात् अपने अपमान का बदला न ले लिया हो) ।

(१) इसलिये सर्वोत्तम यही है कि उक्त चारों उपायों से परीक्षण के लिए राजा, किसी बाह्य वस्तु को माध्यम बनाये और गुप्तचरों द्वारा अमात्यों के चरित्र की परीक्षा करे ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में नवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण ६

अध्याय १०

गूढपुरुषोत्पत्तिः

(१) उपधाभिः शुद्धामात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् । कापटिकोदास्थितगृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनान् सत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुकीश्च ।

(२) परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः कापटिकः । तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्री ब्रूयात्—राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति ।

(३) प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः । स वार्ताकर्मप्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत् । कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान्प्रतिविदध्यात् । वृत्तिकामांश्चोपजपेत्—एतोनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतनकाले चोपस्थातव्यमिति । सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः ।

गुप्तचरों की नियुक्ति

(स्थायी गुप्तचर)

(१) धर्मोपधा आदि उपायों के द्वारा अमात्यवर्ग की परीक्षा कर लेने के अनन्तर राजा गुप्तचरों की नियुक्ति करे । कापटिक, उदास्थित, गृहपतिक, वैदेहक, तापस, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी आदि अनेक प्रकार के गुप्तचर होते हैं ।

(२) दूसरों के रहस्यों को जानने वाला, बड़ा प्रगल्भ (दबंग) और विद्यार्थी की वेष-भूषा में रहने वाला गुप्तचर 'कापटिक' कहलाता है । इस गुप्तचर को धन, मान और सत्कार से सन्तुष्ट कर मन्त्री उससे कहे 'जिस-किसी की भी तुम हानि होते देखो, राजा को और मुझे प्रमाण मान कर तत्काल ही तुम मुझे सूचित कर दो ।'

(३) बुद्धिमान्, सदाचारी, संन्यासी के वेष में रहने वाले गुप्तचर का नाम 'उदास्थित' है । वह अपने साथ बहुत-से विद्यार्थी और बहुत-सा धन लेकर, वहाँ जाकर विद्यार्थियों द्वारा कार्य करवाये, जहाँ कृषि, पशुपालन एवं व्यापार के लिए भूमि नियुक्त है । उस कार्य को करने से जो लाभ हो, उससे वह सब संन्यासियों के भोजन, वस्त्र एवं निवास का प्रबन्ध करे । जो भी इस प्रकार की आजीविका की इच्छा करें, उन्हें सब तरह से अपने वश में कर ले और उनसे कहे 'तुम्हें इसी वेष में राजा का कार्य करना है । जब तुम्हारे वेतन तथा भत्ते का समय आये, यहाँ उपस्थित

(१) कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः। स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।

(२) वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः। स वणिक्कर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।

(३) मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यञ्जनः। स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात्, गूढमिष्टमाहारम्। वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः। शिष्याश्चास्यावेदयेयुः—असौ सिद्धः सामेधिक इति। समेधाशास्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेदल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टिदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानम् इदमद्य श्वो वा भविष्यतीदं वा राजा करिष्यतीति।

हो जाना।' दूसरे संन्यासी भी अपने-अपने संप्रदाय के संन्यासियों को इसी प्रकार समझा-बुझा दें।

(१) बुद्धिमान्, पवित्र हृदय और गरीब किसान के वेष में रहने वाले गुप्तचर को 'गृहपतिक' कहते हैं। वह कृषिकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर के ही समान कार्य करे।

(२) बुद्धिमान्, पवित्र हृदय, गरीब, व्यापारी के वेष में रहने वाला गुप्तचर 'वैदेहक' है। वह व्यापारकार्य के लिए नियुक्त भूमि में जाकर 'उदास्थित' गुप्तचर की भाँति कार्य करता हुआ रहे।

(३) जीविका के लिए सिर मुँड़ाये या जटा धारण किये हुए, राजा का कार्य करने वाला गुप्तचर ही 'तापस' है। वह कहीं नगर के समीप ही बहुत से मुंड या जटिल विद्यार्थियों को लेकर रहे और महीने दो महीने तक लोगों के सामने हरा शाक या मुट्ठीभर अनाज खाता रहे; वैसे छिपे तौर पर अपनी इच्छानुसार सुस्वादु भोजन करता रहे। वैदेहक तथा उसके अनुचर 'तापस' गुप्तचर की पूजा-अर्चना करें। शिष्यमंडली घूम-घूम कर यह प्रचार करे कि यह तपस्वी पूर्ण सिद्ध, भविष्य-वक्ता और लौकिक शक्तियों से संपन्न है। अपना भविष्य-फल जानने की इच्छा से आये हुए लोगों की पारिवारिक पहिचान, उनके शारीरिक चिह्नों के माध्यम से तथा अपने शिष्यों के संकेतों के अनुसार बतावे। ऐसा भी बतावे कि इन-इन कार्यों में थोड़ा लाभ का योग है। इसके अतिरिक्त वह, आग लगने, चोरी हो जाने; दुष्ट लोगों के वधस्वरूप इनाम देने; देश-विदेश के फल; यह कार्य आज होगा या कल; या इस कार्य को राजा करेगा; आदि बातें भी उसको बतावे।

(१) तदस्य गूढाः सत्रिणश्च संवादयेयुः। सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिसम्पन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेन्मन्त्रिसंयोगं च। मन्त्री चैषां वृत्तिकर्मभ्यां विधत्तेत।

(२) ये च कारणादभिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत्, अकारणक्रुद्धान् तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च।

(३) पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम्।
जानीयुः शौचमित्येताः पञ्च संस्थाः प्रकीर्तिताः॥

इति कौटलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
गूढपुरुषोत्पत्तौ संस्थोत्पत्तिर्नाम दशमोऽध्यायः॥

—: ० :—

---

(१) इस प्रश्नोत्तर प्रसंग में 'तापस' गुप्तचर की दूसरे सत्री आदि गुप्तचर सहायहा करें। प्रश्नकर्ताओं में यदि धीर, बुद्धिमान्, चतुर लोग हों तो उनसे वह, राजा की ओर से, धन प्राप्त होने की बात कहे; मन्त्री के साथ भी उनकी मुलाकात का संयोग बताये। जब मंत्री से इन लोगों की मुलाकात हो तो उचित यह होगा कि ऐसे लोगों को मंत्री धन तथा आजीविका आदि देकर, गुप्तचर की भविष्यवाणी को सच्ची सिद्ध कर दे।

(२) जो लोग किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए हों उन्हें धन एवं सम्मान देकर संतुष्ट किया जाय। जो बिना कारण ही क्रुद्ध हों तथा राजा से द्वेष रखते हों, उनका चुपचाप वध करवा डाले।

(३) इस प्रकार धन और मान से राजा द्वारा सम्मानित गुप्तचर तथा अमात्य आदि राजोपजीवी पुरुषों के सद्व्यवहारों को भली-भाँति जान लें। पाँच प्रकार के गुप्तचर पुरुषों की नियुक्ति और उनके कार्यों के विवरण का यही विधान है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दसवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

गूढपुरुषप्रणिधिः

(१) ये चास्य सम्बन्धिनोऽवश्यभर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भक-विद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः संसर्गविद्या वा।

(२) ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रति-योधयेयुस्ते तीक्ष्णाः।

(३) ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः।

(४) परिव्राजिका वृत्तिकामा दरिद्रा विधवा प्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत्। एतया मुण्डावृषल्यो व्याख्याताः। इति सञ्चाराः।

गुप्तचरों की नियुक्ति
(भ्रमणशील गुप्तचर)

(१) जो राजा के संबंधी न हों; किन्तु जिनका पालन-पोषण करना राजा के लिए आवश्यक हो; जो सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण आदि अंगों का शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या; वशीकरण; इन्द्रजाल; धर्मशास्त्र; शकुनशास्त्र; पक्षिशास्त्र; कामशास्त्र तथा तत्संबंधी नाचने-गाने की कला में निपुण हों वे 'सत्री' कहलाते हैं। [१०वें अध्याय में जिन गुप्तचरों का वर्णन किया गया है वे एक ही स्थान पर रहकर कार्य करने के कारण 'संस्था' कहलाते हैं। इस अध्याय में वर्णित गुप्तचर 'संचार' कहलाते हैं, जो कि घूम-घूम कर कार्य करते हैं।]

(२) अपने देश में रहने वाले ऐसे व्यक्ति, जो द्रव्य के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करके हाथी, बाघ और साँप से भी भिड़ जाते हैं, उन्हें 'तीक्ष्ण' कहते हैं।

(३) अपने भाई-बंधुओं से भी स्नेह न रखने वाले, क्रूरप्रकृति और आलसी स्वभाव वाले व्यक्ति 'रसद' (जहर देने वाला) कहलाते हैं।

(४) आजीविका की इच्छुक, दरिद्र, प्रौढ, विधवा, दबंग ब्राह्मणी, रनिवास में संमानित, प्रधान अमात्यों के घर में प्रवेश पानेवाली 'परिव्राजिका' (संन्यासिनी के वेश में खुफिया का काम करने वाली) नाम की गुप्तचरी कहलाती है। इसी प्रकार मुंडा (मुंडित बौद्ध-भिक्षुणी) और वृषली (शूद्रा) आदि नारी गुप्तचरियों को भी जान लेना चाहिए। ये सभी 'संचार' नामक गुप्तचर हैं।

(१) तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसन्निधातृप्रदेष्टृनायकपौरव्यावहारिककार्मान्तिकमन्त्रिपरिषदध्यक्षदण्डदुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेषशिल्पभाषाभिजनापदेशान् भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत् ।

(२) तेषां बाह्यं चारं छत्रभृङ्गारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणस्तीक्ष्णा विद्युः । तं सत्त्रिणः संस्थास्वर्पयेयुः ।

(३) सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः । तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः ।

---

(१) राजा को चाहिए कि वह, इन सत्री आदि गुप्तचरों को मंत्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, ड्योढ़ीदार, अन्तःपुररक्षक, छावनी-रक्षक, कलक्टर, कोषाध्यक्ष, कमिश्नर, हवलदार, नगरमुखिया, खदान-निरीक्षक, मन्त्रि-परिषद् का अध्यक्ष, सेनारक्षक, दुर्गरक्षक, सीमारक्षक और अटवीपाल आदि अधिकारियों के समीप, वेष, बोली, कौशल, भाषा तथा कुलीनता के आधार पर उनकी भक्ति और उनके सामर्थ्य की परीक्षा करके, तब रवाना करे ।

(२) उनमें से तीक्ष्ण नामक गुप्तचर का कर्तव्य है कि वह छत्र, चामर, व्यजन, पादुका, आसन, शिविका (पालकी) और घोड़े आदि बाहरी उपकरणों की देख-रेख करता हुआ अमात्य आदि की सेवा करे और उनके व्यवहारों को जाने । तीक्ष्ण गुप्तचर द्वारा जानी हुई बातों को सत्री नामक गुप्तचर स्थानिक कापटिक आदि गुप्तचरों को बता दे ।

(३) सूद (रसोइया), आरालिक (मांस पकाने वाला), स्नापक (नहलाने वाला), संवाहक (हाथ-पैर दबाने वाला), आस्तरक (विस्तर बिछाने वाला), कल्पक (नाई), प्रसाधक (शृंगार करने वाला) और उदक-परिचारक (जल भरने वाला) आदि विभिन्न रूप-नामों में रह कर रसद नामक गुप्तचर, मन्त्री आदि उच्च अधिकारियों के भेदों का पता लगाये । इसी प्रकार कुबड़े, बौने, किरात (जङ्गली आदमी), गूँगे, बहरे, मूर्ख, अन्धे आदि के वेष में गुप्तचर और नट, नाचने-गाने-बजाने वाले, कहानी कहने वाले, कूद-फाँद कर खेल दिखाने वाले, आदि के वेष में स्त्री गुप्तचर सब रहस्यों का पता लगा ले । भिक्षुकी वेष धारण करने वाली गुप्तचर महिला को चाहिये कि वह रसद आदि पुरुष गुप्तचरों से प्राप्त समाचारों को कापटिक आदि गुप्तचरों तक पहुँचा दे ।

(१) संस्थानामन्तेवासिनः संज्ञालिपिभिश्चारसञ्चारं कुर्युः। न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः।

(२) भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातापितृव्यञ्जनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यवाद्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः। दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम्।

(३) त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्ययः। तेषामभीक्ष्णविनिपाते तूष्णींदण्डः प्रतिषेधो वा।

(४) कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः सम्पातनिश्चारार्थं, त उभयवेतनाः।

---

(१) संस्थाओं (कापटिक आदि गुप्तचरों) के विद्यार्थी अपनी विशिष्ट संकेत-लिपि द्वारा उस सूचना को राजा तक पहुँचावें। ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि संस्था-गुप्तचरों को संचार-गुप्तचर और संचार-गुप्तचरों को संस्था-गुप्तचर बिलकुल न जानने पावें।

(२) यदि अमात्य आदि के घरों में भिक्षुकी का अंतःप्रवेश निषिद्ध हो तो वह समाचार द्वारपालों के माध्यम से बाहर भिक्षुकी तक पहुँचे। यदि इसमें भी कुछ आशंका या असम्भव जान पड़े तो अंतःपुर के नौकरों के माता-पिता बनने का बहाना करके वृद्धा स्त्री-पुरुष भीतर प्रवेश करके रहस्य का पता लगायें। या तो रानियों के बाल सवाँरने वाली या नाचने-गाने वाली स्त्रियों अथवा दासियों द्वारा, अथवा निजी संकेतों वाले गीतों, श्लोकों, प्रार्थनाओं, या तो बाजों, बर्तनों, टोकरियों में गुप्त लेख रखकर, अथवा अन्य विधियों से, जैसा भी समय के अनुसार अपेक्ष्य हो, अंतःपुर के समाचारों को बाहर लाया जाय। यदि इन युक्तियों से भी सफलता न मिले तो गुप्तचर को चाहिए कि वह किसी भयङ्कर बीमारी अथवा पागलपन के बहाने से आग लगाकर या किसी को जहर देकर (जिससे अंतःपुर में कोलाहल मच जाये) चुपचाप बाहर निकल आवे।

(३) परस्पर अपरिचित तीन गुप्तचरों द्वारा लाये गये समाचार यदि एक ही तरह से मिलें तो उन्हें ठीक समझना चाहिए। यदि वे परस्पर विरोधी समाचारों को लायें तो उन्हें या तो नौकरी से अलग कर दिया जाय अथवा चुपचाप पिटवाया जाय।

(४) उक्त गुप्तचरों के अतिरिक्त 'कंटकशोधन' प्रकरण में आगे बताये गए गुप्तचरों को भी नियुक्त करना चाहिये। ऐसे गुप्तचर विदेशों में जाकर वहाँ की सरकार के वेतनभोगी नौकर बनें और उनके गुप्त रहस्यों को समझें। ये गुप्तचर मित्र-पक्ष और शत्रु-पक्ष दोनों ओर से वेतन लें।

(१) गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान् ।
तांश्चारिप्रहितान् विद्यात् तेषां शौचं च तद्विधैः ॥
(२) एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान् ।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥
(३) अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनषण्डकाः ।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥
(४) दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः ।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥
(५) वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थाः शीघ्राश्चारपरम्पराः ॥
(६) परस्य चैते बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।
चारसञ्चारिणः संस्था गूढाश्चागूढसंज्ञिताः ॥

---

(१) उभयवेतनभोगी इस प्रकार के गुप्तचरों के सम्बन्ध में विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह उनके स्त्री-बच्चों को सत्कारपूर्वक अपने आधीन रखे । शत्रु की ओर से नियुक्त इस प्रकार के उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की भी राजा जानकारी रखे और उनके माध्यम से अपने उभयवेतनभोगी गुप्तचरों की पवित्रता की भी परीक्षा करता रहे ।

(२) इस प्रकार विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शत्रु, मित्र, मध्यम तथा उदासीन राजाओं और उनके मन्त्री, पुरोहित, सेनापति आदि अठारह प्रकार के अधीनस्थ कर्मचारियों के निकट, सभी स्थानों पर, अपने गुप्तचरों को नियुक्त करे ।

(३) इसके अतिरिक्त उन शत्रु, मित्र, मध्यम आदि राजाओं के घरों तथा उनके मन्त्री, पुरोहित आदि के घरों में भी काम करने वाले कुबड़े, बौने, नपुंसक, कारीगर स्त्रियाँ, गूँगे तथा दूसरे-दूसरे प्रकार के बहानों को लेकर म्लेच्छ जाति के पुरुषों को नियुक्त करना चाहिए ।

(४) किलों में व्यापार करने वाले लोगों को, किले की सीमा पर सिद्ध तपस्वियों को, राज्य के अन्तर्गत अन्य स्थानों पर कृषक तथा उदास्थित पुरुषों को और राज्य की सीमा पर चरवाहों को, गुप्तचर वेष में नियुक्त करना चाहिये ।

(५) जंगल में शत्रु की प्रत्येक गति-विधि का पता लगाने के लिए चतुर, वानप्रस्थी और जंगली लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिए ।

(६) इस प्रकार, प्रकट रूप से सामान्य स्थिति में रहते हुए ये गुप्तचर, शत्रु की ओर से नियुक्त सभी, तीक्ष्ण, कापटिक, उदास्थित आदि गुप्तचरों को अपने वर्ग के अनुसार ही चीन्हें ।

(१) अकृत्यान् कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान् कार्यहेतुभिः ।
परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ॥

इति कौटलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे गूढपुरुषोत्पत्तौ सञ्चारोत्पत्तिः, गूढपुरुषप्रणिधिर्नाम एकादशोऽध्यायः ॥

—: ० :—

---

(४) शत्रु के किसी प्रलोभन या बहकावे में न फँसने वाले अपने विश्वस्त पुरुषों को, शत्रु के गुप्तपुरुषों का पता लगाने के लिए, राज्य की सीमा पर नियुक्त किया जाना चाहिए और उन्हें शत्रुपक्ष के लोगों को स्ववश करने के उपाय भी बता देने चाहिए ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण ८

अध्याय १२

स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम्

(१) कृतमहामात्यापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् ।

(२) सत्त्रिणो द्वन्द्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः—सर्वगुणसम्पन्नश्चायं राजा श्रूयते । न चास्य कश्चिद् गुणो दृश्यते यः पौरजानपदान् दण्डकराभ्यां पीडयति इति ।

(३) तत्र येऽनुप्रशंसेयुः, तानितरस्तं च प्रतिषेधयेत्—मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे । धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं प्रकल्पयामासुः । तेन भृता राजानः प्रजानां योगक्षेमवहाः । तेषां किल्विषं दण्डकरा हरन्ति, योगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् ।

अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष की सुरक्षा

(१) राजा को चाहिए कि महामंत्री, मंत्री, पुरोहित आदि के समीप गुप्तचर नियुक्त करने के पश्चात् वह अपने प्रति प्रजाजनों तथा नगरनिवासियों का अनुराग-द्वेष जानने के लिए वहाँ भी गुप्तचरों की नियुक्ति करे ।

(२) पहिले तो गुप्तचर आपस में ही लड़ने-झगड़ने लगें; और बाद में वे तीर्थस्थानों, सभा-सोसाइटियों, खाने-पीने की दूकानों, राजकर्मचारियों के बीच, तथा नाना प्रकार के लोगों में यह कहकर वाद-विवाद करें कि 'यह राजा तो सर्वगुण-संपन्न सुना जाता है; किन्तु इसमें कोई भी सद्गुण नहीं दिखाई दे रहा है । उल्टा वह नगरवासियों को दण्ड देकर एवं कर वसूली करके पीड़ा पहुँचा रहा है ।'

(३) उसके बाद सुनने वालों की उचित-अनुचित प्रतिक्रिया को ताड़ता हुआ दूसरा गुप्तचर उसके विरोध में यों कहे—'देखो, जैसे छोटी मछली बड़ी मछली को खा जाती है, पुराकाल में वैसे ही बलवान लोगों ने निर्बल लोगों का रहना दूभर कर दिया था । इस अन्याय से बचने के लिए प्रजा ने मिलकर विवस्वान् के पुत्र मनु को अपना राजा नियुक्त किया; और तभी से खेती की उपज का छठा भाग, व्यापार की आमदनी का दसवाँ भाग तथा थोड़ा-सा सुवर्ण राजा के लिए कर रूप में निर्धारित भी कर दिया था । प्रजा के द्वारा निर्धारित भाग को पाकर राजाओं ने प्रजा के योगक्षेम का सारा दायित्व अपने ऊपर लिया । इस प्रकार ये निर्धारित दण्ड एवं कर प्रजा के उत्पीडनों को दूर करने में सहायक होते हैं, और प्रजा की भलाई एवं कल्याण के कारण सिद्ध होते हैं । यही कारण है कि जंगलों में एकान्त जीवन बिताने

तस्मादुञ्छषड्भागमारण्यका अपि निवपन्ति—तस्यैतद् भागधेयं योऽस्मान् गोपायतीति। इन्द्रयमस्थानमेतद् राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः। तानवमन्यमानं दैवोऽपि दण्डः स्पृशति। तस्माद् राजानो वावमन्तव्याः इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत्।

(१) किंवदन्तीं च विद्युः।

(२) ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति, तैरुपकुर्वन्ति व्यसने अभ्युदये वा, कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्ति, अमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति, तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः।

(३) तुष्टान् भूयः पूजयेत्। अतुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत्। परस्पराद्वा भेदयेदेनान् सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च। तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत्। विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत्। गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत् परेषामास्पदभयात्।

वाले ऋषि-मुनि भी दाना-दाना करके बीने हुए अन्न का छठा भाग राजा को देते हैं; यह जानकर कि राजा का इस पर सनातन हक है, जिसके बदले में वह हमारी रक्षा करता है। इन्द्र और यम के समान ये राजा लोग भी प्रजाजनों का प्रत्यक्ष निग्रह एवं उनपर अनुग्रह करने वाले होते हैं। इसलिए जो उनका तिरस्कार करता है, निश्चित ही, उस पर दैवी विपत्तियाँ टूटती हैं। यही कारण है, जिनको दृष्टि में रख कर राजा का अपमान नहीं करना चाहिए।' इत्यादि बातों को कह कर राजा की निन्दा करने वालों को रोक दें।

(१) गुप्तचरों के लिए आवश्यक है कि वे अफवाहों पर भी ध्यान दें।

(२) जो लोग धान्य, पशु, हिरण्य आदि से राजा की सेवा करते हैं; विपत्ति और अभ्युन्नति के समय उसकी सहायता करते हैं; राजा के प्रति क्रुद्ध भाई तथा कुपित प्रजा को जो शान्त कर देते हैं; उनकी प्रसन्नता और उनके कोप पर भी मुण्ड एवं जटिल गुप्तचर निगाह रखें।

(३) जो लोग राजा से सन्तुष्ट हों उन्हें धन और मान द्वारा और भी सन्तुष्ट करना चाहिए। जो किसी कारण अप्रसन्न हैं, उन्हें भी प्रसन्न करने के लिए धन आदि देना चाहिए; सान्त्वना भी देनी चाहिए; न हो तो इन असंतुष्ट व्यक्तियों में आपसी कलह करा दे; सामन्त, आटविक एवं उनके सम्बन्धियों से भी इनकी फूट डाल दे। इन उपायों के बावजूद भी यदि वे असन्तुष्ट ही बने रहें तो राजा को चाहिए कि अपने दण्डसम्बन्धी या करसम्बन्धी अधिकारों द्वारा वह सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ उनका द्वेष करा दे। जब सारा जनपद उनका द्वेषी हो जाय तब या तो चुपचाप

(१) क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः। तेषां कार्तान्तिक-नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यञ्जनाः परस्पराभिसम्बन्धम् अमित्रप्रतिसम्बन्धं वा विद्युः।

(२) तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्। अतुष्टान् सामदानभेददण्डैः साधयेत्।

(३) एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः।
परोपजापात् संरक्षेत् प्रधानान् क्षुद्रकानपि ॥

इति कौटलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

—: ० :—

ही उनका बध करवा दिया जाय अथवा असन्तुष्ट जनपद से ही उनका दमन करा दिया जाय।

(१) इन लोगों के दमन के लिए एक दूसरा तरीका यह भी है कि राजा उनके स्त्री-बच्चों को अपने अधिकार में करले और उन्हें खदान के कार्य में भेज दिया जाय। क्योंकि ऐसा भी संभव है कि ये असन्तुष्ट लोग शत्रुपक्ष में जाकर मिल जाय। प्रायः ऐसा देखा गया है कि क्रोधी, लोभी, डरपोक और अपमानित लोग सहज ही शत्रु के वश में हो जाते हैं।

(२) जो व्यक्ति सन्तुष्ट हों, राजा उन्हें और भी धन-मान से सत्कृत करे। किन्तु असन्तुष्ट व्यक्तियों को साम, दाम, दण्ड, भेद जैसे भी बन पड़े, अपने वश में करे।

(३) इस प्रकार बुद्धिमान् राजा को चाहिए कि अपने राज्य के छोटे-बड़े कृत्य अकृत्य लोगों को वह, किसी भी प्रकार, शत्रु के पक्ष में जाने से रोके।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में बारहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण ९

अध्याय १३

परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः

(१) कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः परविषये वाच्यः।

(२) संश्रुत्यार्थान् विप्रलब्धः, तुल्यकारिणोः शिल्पे वोपकारे वा विमानितः, वल्लभावरुद्धः, समाहूय पराजितः, प्रवासोपतप्तः, कृत्वा व्यय-मलब्धकार्यः, स्वधर्माद् दायाद्याद् वोपरुद्धः, मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः, कुल्यैरन्तर्हितः, प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः, काराभिन्यस्तः, परोक्तदण्डितः, मिथ्याचारवारितः, सर्वस्वमाहारितः, बन्धनपरिक्लिष्टः, प्रवासितबन्धु-रिति क्रुद्धवर्गः।

(३) स्वयमुपहतः, विप्रकृतः, पापकर्माभिख्यातः, तुल्यदोषदण्डेनो-द्विग्नः, पर्याप्तभूमिः, दण्डेनोपहतः, सर्वाधिकरणस्थः, सहसोपचितार्थः, तत्कुलीनोपाशंसुः, प्रद्विष्टो राज्ञा, राजद्वेषी चेति भीतवर्गः।

शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को मिलाना

(१) अपने देश में कृत्य-अकृत्य पक्ष को किस प्रकार सुरक्षित अथवा संगठित रखना चाहिए, इसका प्रतिपादन किया जा चुका है। शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को किस प्रकार अपने वश में करना चाहिए, अब इसका वर्णन किया जाता है।

(२) जिसको धन देने की प्रतिज्ञा करके धन न दिया गया हो; किसी शिल्प या उपकार सम्बन्धी कार्यों को समान रूप से करने वाले दो व्यक्तियों में से एक का तो सम्मान किया गया हो और दूसरे की अवमानना की गई हो; राजा के विश्वस्त कर्मचारियों ने जिसको राजभवन में प्रवेश करने से रोक दिया हो; स्वयं बुलाकर जिसका तिरस्कार किया गया हो; राजाज्ञा से प्रवासित होने के कारण दुःखित; व्यय करके भी जिसका अभीष्ट कार्य पूरा न हुआ हो, जिसको अपने धर्म तथा अधि-कार से रोका गया हो; सम्मानित तथा अधिकारपूर्ण पद से जिसको च्युत किया गया हो; राजपुरुषों द्वारा जिसको बदनाम किया गया हो; जिसकी स्त्री को जबरदस्ती छीन लिया गया हो; जिसको जेल में ठूंस दिया गया हो; दूसरे के कहने मात्र से जिसको दण्ड दिया गया हो; झूठा इलजाम लगाकर जिस पर धार्मिक प्रतिबन्ध लगा दिया हो; जिसका सर्वस्व अपहरण किया गया हो; अशक्त कार्यों पर नियुक्त करके जिसको पीडित किया गया हो और जिसके बन्धु-बान्धवों को देश-निकाला दिया गया हो—इस प्रकार के सभी लोग 'क्रुद्धवर्ग' कहलाते हैं।

(३) किसी लोभ के कारण हिंसा करके जो दूषित हो चुका हो; पाप कर्मों को करने में जो कुख्यात हो; अपने समान अपराधी को दण्डित हुआ देखकर जो

(१) परीक्षीणोऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहार श्चेति लुब्धवर्गः।

(२) आत्मसम्भावितो मानकामः शत्रुपूजामर्षितो नीचैरुपहितस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासन्तुष्ट इति मानिवर्गः।

(३) तेषां मुण्डजटिलव्यञ्जनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत्।

(४) यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत् सर्वं प्रमृद्गात्येवमयमशास्त्रचक्षुरन्धो राजाऽन्धेन मन्त्रिणाऽधिष्ठितः, पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः। शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुम्। अमर्षः क्रियताम्—इति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत्।

(५) यथा लीनः सर्पो यस्माद् भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशङ्कस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजति। अन्यत्र गम्यताम्—इति भीतवर्गमुपजापयेत्।

घबड़ा गया हो; भूमि का अपहरण करने वाला; जो दण्ड के द्वारा वश में किया गया हो; सभी राजकीय विभागों पर जिसका अधिकार हो; अपनी कार्यक्षमता से जिसने प्रभूत धन एकत्र कर लिया हो; जो राजा के किसी वंशज हिस्सेदार के निकट कुछ कामना से रहता हो; जिससे राजा शत्रुता रखता हो और जो राजा से शत्रुता रखता हो—इस प्रकार से सभी लोग 'भीतवर्ग' कहलाते हैं।

(१) जिसका सब धन-वैभव नष्ट हो गया; जो कायर, व्यसनी और अपव्ययी हो, वह 'लुब्धवर्ग' कहलाता है।

(२) अपने को महान् समझनेवाला; आत्मश्लाघी; शत्रु के सम्मान को सहन न करनेवाला; नीच लोगों द्वारा प्रशंसित; तीक्ष्णप्रकृति; साहसी और भोग्य-पदार्थों से कभी सन्तुष्ट न होनेवाला वर्ग ही 'मानीवर्ग' कहलाता है।

(३) उक्त क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि कृत्यपक्ष के लोगों में से जिस मुण्ड या जटिल गुप्तचर के जो-जो भक्त हों उसको वही गुप्तचर अपने वश में करे।

(४) गुप्तचर, क्रुद्धवर्ग के लोगों को उनके स्वामी से यह कह कर फोड़े, 'देखो, जैसे उन्मत्त पीलवान से चलाया गया मतवाला हाथी अपने सामने जो कुछ भी देखता है, उसे कुचल डालता है, उसी प्रकार शास्त्ररूपी आँखों से हीन, अपने अंधे मंत्री के साथ रहता हुआ यह राजा राष्ट्र और प्रजा को नष्ट करने के लिए उद्यत है। ऐसी अवस्था में इस राजा से शत्रुता रखने वाले लोगों को उभाड़ देने से उसका अपकार किया जा सकता है। इस राजा के प्रति तुम्हें कुपित होना चाहिए।' यह कहकर क्रुद्धवर्ग को राजा से फोड़ दे।

(५) भीतवर्ग को अपने वश में करने के लिए गुप्तचर ऐसा कहे—'देखो, जैसे डरा हुआ साँप जिससे भय खाता है उसी पर अपना विष उगल देता है, उसी प्रकार यह राजा भी तुमसे शंकित है और सर्वप्रथम यह तुम्हारे ऊपर क्रोधरूपी विष उगलने

(१) यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्यः, एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसम्पन्नेभ्यः। असौ राजा पुरुष-विशेषज्ञः सेव्यताम्–इति लुब्धवर्गमुपजापयेत्।

(२) यथा चण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम्। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः, तत्र गम्यताम्–इति मानिवर्गमुपजापयेत्।

(३) तथेति प्रतिपन्नांस्तान् संहितान् पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान् स्वकर्मसु॥

(४) लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान् भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत्॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः त्रयोदशोऽध्यायः॥

—: ० :—

वाला है। तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम इस स्थान को छोड़ कर कहीं अन्यत्र चले जाओ।' यह कह कर भीतवर्ग का भेदन करे।

(१) लुब्धवर्ग को वश में करने के लिए गुप्तचर यों कहे, 'देखो जैसे चाण्डालों की गाय चाण्डालों के लिए ही दूध देती है, ब्राह्मणों के लिए नहीं, उसी प्रकार राजा भी बल, बुद्धि और वाक्शक्ति से हीन लोगों के लिए लाभदायक है, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के लिए नहीं। इसके विपरीत अमुक राजा बड़ा गुणज्ञ है, तुम्हें उसी के आश्रय में रहना चाहिए।' इस प्रकार लुब्धवर्ग को मिलाये।

(२) मानीवर्ग का भेदन करने के लिए गुप्तचर कहे 'देखो, जैसे चाण्डालों का कुँआ अकेले उन्हीं के लिए उपयोगी है, उसी प्रकार नीच राजा भी नीच लोगों के लिए ही सुखकर है, तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषों के लिए नहीं। किन्तु वह अमुक नाम का राजा स्वयं गुणी और गुणज्ञों का आदर करनेवाला है। तुम्हें उसी के आश्रम में जाकर रहना चाहिए।' इस प्रकार मानीवर्ग को उसके स्वामी से अलग करे।

(३) इस प्रकार राजा अपने पक्ष में किये गए पुरुषों को शपथ, संधि आदि से विश्वास दिला कर उन्हें उन्हीं कार्यों में नियुक्त करे, जिन पर वे नियुक्त थे; किन्तु उनके पीछे गुप्तचरों को अवश्य रखे।

(४) इस प्रकार राजा, शत्रुदेश में कृत्यपक्ष के पुरुषों को साम तथा दाम के द्वारा अपनी ओर मिलावे। परन्तु अकृत्यपक्ष के पुरुष उन्हें भेद तथा दण्ड के द्वारा अपनी ओर करते रहें और उनके सामने शत्रु के दोषों की बराबर चर्चा करते रहें।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में परविषयक कृत्याकृत्यपक्षोपग्रह
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण १०

अध्याय १४

मन्त्राधिकारः

(१) कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत् । मन्त्रपूर्वाः सर्वारम्भाः ।

(२) तदुद्देशः संवृतः कथानामनिःस्रावी पक्षिभिरप्यनालोक्यः स्यात् । श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः । तस्मान्मन्त्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् । उच्छिद्येत मन्त्रभेदो ।

(३) मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम् । इङ्गितमन्यथावृत्तिः । आकृतिग्रहणमाकारः ।

(४) तस्य संवरणम् आयुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालादिति । तेषां हि

मंत्राधिकार

(१) अपने देश और शत्रुदेश के कृत्य-अकृत्य पक्ष को वश में करने के उपरान्त विजय की इच्छा रखने वाले राजा को चाहिए कि वह अपने देश में दुर्ग आदि तथा शत्रुदेश के सम्बन्ध में संधि-विग्रह आदि कार्यों पर विचार करे। इस प्रकार के सभी कार्यों को गम्भीर विचार-विनिमय के अनन्तर ही आरम्भ करना चाहिए।

(२) जिस स्थान पर बैठकर मन्त्रणा की जाय वह चारों ओर से इस प्रकार बन्द होना चाहिए कि जिससे वहाँ पक्षी तक न झाँक सके और कोई शब्द बाहर न सुनाई दे, क्योंकि अनुश्रुति है कि पुराकाल में किसी राजा की गुप्त मंत्रणा को तोता और मैना ने सुनकर बाहर प्रकट कर दिया था। इसी प्रकार कुत्ते तथा अन्य पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी सुना जाता है। इसलिए राजा की आज्ञा के बिना कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थिति में मंत्रणास्थल पर न जावे। यदि गुप्त मन्त्रणा के भेद को कोई फोड़ दे तो तत्काल ही उसको मरवा देना चाहिए।

(३) कभी-कभी बिना कहे ही दूत, अमात्य तथा राजा के हाव-भाव एवं मुद्रा द्वारा भी गुप्त भेद प्रकट हो जाते हैं। स्वाभाविक क्रियाओं के विपरीत भिन्न चेष्टाएँ 'इंगित' कहलाती हैं। चेष्टाओं को प्रकट करनेवाले अंग 'आकार' या 'आकृति' कहलाते हैं।

(४) इसलिए विजिगीषु राजा को चाहिए कि जब तक विचारित कार्यों के आरम्भ करने का समय नहीं आता तब तक अपने गुप्त भावों को दबाकर रखे।

प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः प्रच्छन्नोऽवमतो वा मन्त्रं भिनत्ति। तस्माद् रक्षेन्मन्त्रम्।

(१) मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च। तस्माद् गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः। मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति। तेषामप्यन्ये। सैषा मन्त्रिपरम्परा मन्त्रं भिनत्ति।

(२) तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किञ्चिच्चिकीर्षितम्।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा॥

(३) नैकस्य मन्त्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः। प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। अनुपलब्धस्य ज्ञानमुपलब्धस्य निश्चयबलाधानमर्थद्वैधस्य संशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरिति मन्त्रिसाध्यमेतत्। तस्माद् बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मन्त्रम्।

मंत्रियों की असावधानी के कारण या मद्यपान की बेहोशी में अथवा सोते समय आकस्मिक प्रलाप द्वारा या विषय-भोग की लालसा से अथवा अभिमान के भाव से गुप्त मंत्रणाएँ समय से पहिले ही प्रकट हो जाती हैं। आड़ में छिपकर सुननेवाले अथवा मन्त्रणाकाल में मूर्ख कहकर अपमानित हुआ व्यक्ति भी मन्त्र के भेद को फोड़ देता हैं। इसलिए इन सभी बातों को दृष्टि में रखकर राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त रहस्यों की सावधानी से रक्षा करे।

(१) आचार्य भारद्वाज का सुझाव है कि 'मन्त्र के प्रकट हो जाने पर राजा और उसके सलाहकारों की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। इसलिए इस प्रकार की गुप्त मन्त्रणाओं पर राजा अकेला ही विचार करे; क्योंकि मन्त्रियों के भी अपने सलाहकार होते हैं। उनके भी दूसरे लोग परामर्शदाता होते हैं इसलिए इस मन्त्रि-परम्परा के कारण गुप्त बातों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है।

(२) 'इसलिए गुप्त मन्त्रणाओं को राजा के अतिरिक्त कोई न जानने पावे। केवल कार्यारम्भ करनेवाले व्यक्ति ही उसके आभास को जान सकें और उन्हें भी उसका परिणाम कार्य की समाप्ति के बाद ही ज्ञात हो।'

(३) आचार्य विशालाक्ष कुछ संशोधन के साथ अपना विचार प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि 'एक ही व्यक्ति द्वारा सोचा-विचारा हुआ मन्त्र सिद्धिदायक नहीं हो सकता। सभी राजकार्य प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के होते हैं; उनके लिए मन्त्रियों की अपेक्षा होती है। न जाने हुए कार्य को जानना, जाने हुए कार्य का निश्चय करना, निश्चित कार्य को दृढ करना, किसी कार्य में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर विचार-विमर्श द्वारा उस संशय का निराकरण करना, आंशिक कार्य को पूरी तरह

(१) न कश्चिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम् ।
बालस्याप्यर्थवद् वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ।।

(२) एतन्मन्त्रज्ञानं नैतन्मन्त्ररक्षणमिति पाराशराः । यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत्—कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत् तत् कथं कर्तव्यमिति । ते यथा ब्रूयुः तत् कुर्यात् । एवं मन्त्रोपलब्धिः संवृतिश्च भवतीति ।

(३) नेति पिशुनः । मन्त्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा । स दोषः । तस्मात् कर्मसु ये येष्वभिप्रेतास्तैः सह मन्त्रयेत् । तैर्मन्त्रयमाणो हि मन्त्रबुद्धिं गुप्तिं च लभत इति ।

विचारना इत्यादि सभी बातें मन्त्रियों में सहयोग से ही पूरी की जा सकती हैं। इसलिए विजिगीषु राजा को अत्यन्त बुद्धिमान् और पर्याप्त अनुभवी व्यक्तियों के साथ बैठकर विचार करना चाहिए।

(१) 'राजा को चाहिए कि सलाह करते समय वह किसी को अवमानित न करे; सबकी बातों को ध्यानपूर्वक सुने; यहाँ तक कि बालक की भी सारगर्भित बात को ग्रहण करे।'

(२) आचार्य पराशर के मतावलम्बी विद्वानों का कहना है कि 'आचार्य विशालाक्ष के उक्त कथन से मन्त्र का ज्ञान भले ही हो सकता है, मन्त्र की रक्षा नहीं। इसलिए राजा को जिस कार्य के लिए सलाह लेनी हो उस कार्य के समान ही दूसरे कार्य के सम्बन्ध में वह मन्त्रियों से पूछे। राजा किसी ऐतिहासिक घटना का हवाला देकर कहे कि अमुक कार्य इस ढंग से किया गया था; इसी कार्य को यदि इस ढंग से करना होता तो कैसे किया जाना चाहिए था। इसपर मन्त्री जो राय दें उसके अनुसार ही तत्समान अपने अभीष्ट कार्य को सम्पन्न करे। ऐसा करने से मन्त्र का ज्ञान भी हो जाता है और मन्त्र की रक्षा भी।'

(३) आचार्य पिशुन (नारद) इस मन्तव्य को नहीं मानते। उनकी स्थापना है 'क्योंकि इस तरह प्रकारान्तर से मन्त्रियों के सम्मुख किसी बात को रख देने से वे समझने लगते हैं कि राजा हमारी सलाह नहीं मानता और उसका हम पर विश्वास नहीं है। इसलिए वे पूर्वघटित एवं अघटित विषय पर लापरवाही से उत्तर देते हैं और उस बात को प्रकाशित भी कर देते हैं। यह तो मन्त्र के लिए बड़ा दोष है। इसलिए राजा को यही उचित है कि जो लोग जिन-जिन कार्यों पर नियुक्त एवं जिन-जिन विचारों के लिए उपयुक्त हैं उन्हीं के साथ वैसी सलाह करे। ऐसा करने से मन्त्रणा में अधिक परिमार्जन हो जाता है और उसकी सुरक्षा भी हो जाती है।

(१) नेति कौटिल्यः। अनवस्था ह्येषा। मन्त्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मन्त्रयेत। मन्त्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधिगच्छेत्। एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति। द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्यामवगृह्यते, विगृहीताभ्यां विनाश्यते। त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम्। उपपन्नं तु भवति। ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते, मन्त्रो वा रक्ष्यते।

(२) देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथासामर्थ्यं मन्त्रयेत।

(३) कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसंपद् देशकालविभागः विनिपातप्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः। तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च। हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात्। अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत्। न दीर्घकालं मन्त्रयेत। न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात्।

---

(१) आचार्य कौटिल्य उक्त मत से अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'नारदमुनि की बताई हुई युक्तियों के अनुसार मन्त्र व्यवस्थित नहीं हो सकता। इसलिए तीन या चार मन्त्रियों को साथ बैठाकर राजा को मन्त्रणा करनी चाहिए। क्योंकि एक ही मन्त्री से सलाह करता हुआ राजा किसी कठिनतम कार्य के अड़ जाने पर उचित समाधान नहीं कर पाता और मन्त्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में मनमाना करने लगता है। दो मंत्रियों के साथ बैठकर भी वह सलाह करता है तो कोई असंभव नहीं कि वे दोनों मिलकर राजा को अपने वश में कर लें अथवा दोनों लड़ने लग जायँ तो सारी मंत्रणा ही धूल में मिल जायगी। यदि तीन या चार मंत्री सलाहकार होंगे तो उस अवस्था से इस प्रकार के अनर्थकारी महान् दोष के उत्पन्न हो जाने की संभावना नहीं है। कोई भी दोष उसमें सहसा ही नहीं आ सकता है। यदि चार से अधिक मन्त्री हो जायँ तो कार्य का निश्चय करना कठिन हो जाता है और उस दशा में मन्त्र की सुरक्षा में भी सन्देह हो जाता है।'

(२) इसलिए देश, काल और कार्य के अनुसार एक या दो मन्त्रियों के साथ भी राजा मन्त्रणा करे। अपनी विचार-शक्ति के अनुसार वह अकेला बैठकर कुछ कार्यों का स्वयं ही निर्णय करे।

(३) मंत्र के पाँच अंग होते हैं : १. कार्यारंभ करने का उपाय, २. पुरुष तथा द्रव्य-संपत्ति, ३. देश-काल का विभाग, ४. विघ्न-प्रतीकार और ५. कार्यसिद्धि। मंत्र के विषय में राजा एक-एक मंत्री से अथवा एक साथ सभी मंत्रियों से परामर्श कर सकता है। मंत्रियों के भिन्न-भिन्न अभिप्रायों को वह युक्तियों के द्वारा समझे। भली-

(१) मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान् कुर्वीतेति मानवाः।

(२) षोडशेति बार्हस्पत्याः।

(३) विंशतिमित्यौशनसाः।

(४) यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः।

(५) ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः। अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसम्पदं च कर्मणां कुर्युः। आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्। अनासन्नैः सह पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत। इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम्। स तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः।

(६) आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात्। तत्र यद् भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत् कुर्यात्। कुर्वतश्चः—

भाँति समझ-बूझ जाने पर अविलंब ही वह अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर दे। किसी कार्य को अधिक समय तक विचारते रहना उचित नहीं है। जिन लोगों का कभी अपकार किया हो, उनके साथ या उनके सहयोगियों के साथ कभी भी मंत्रणा नहीं करनी चाहिए।

(मन्त्रि-परिषद् का विचार)

(१) मनु के अनुयायी अर्थशास्त्रविदों का इस सम्बन्ध में कहना है कि 'मंत्रि-परिषद् में बारह अमात्यों की नियुक्ति की जानी चाहिए।'

(२) बृहस्पति के अनुयायी विद्वान् 'सोलह मन्त्रियों' के पक्ष में हैं।

(३) शुक्राचार्य-पक्ष के आचार्य मन्त्रियों की संख्या 'बीस' रखना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

(४) आचार्य कौटिल्य का कहना है कि 'कार्य करने वाले पुरुषों के सामर्थ्य के अनुसार ही उनकी संख्या नियत होनी चाहिए।'

(५) वे निर्धारित मन्त्री विजिगीषु राजा के और उसके शत्रु राजा के सम्बन्ध में विचार करें। जो कार्य प्रारम्भ न किये गए हों उन्हें प्रारम्भ करायें; प्रारम्भ किये कार्यों को पूरा करावें और जो कार्य पूरे हो चुके हों उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन-संमार्जन करें। निष्कर्ष यह कि विभागीय अध्यक्ष अपने-अपने कार्यों को अंत तक अधिकाधिक निपुणता से सम्पन्न करें। जो मन्त्री राजा के सन्निकट हों, उनको साथ लेकर राजा उनके कार्यों का स्वयं ही निरीक्षण करे। किन्तु जो दूर हों, उनसे पत्र द्वारा परामर्श करता रहे। इन्द्र की मन्त्रि-परिषद् में एक हजार ऋषि थे, जो कि उसके कार्यों के निर्देशक थे। इसीलिए तो दो नेत्रों वाले इन्द्र को हजार आँखों वाला (सहस्राक्ष) कहा गया है।

(६) अत्यावश्यक कार्य के आ जाने पर राजा, मन्त्रि-परिषद् का आयोजन कर

(१) नास्य गुह्यं परे विद्युश्छिद्रं विद्यात् परस्य च ।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद् विवृतमात्मनः ।।
(२) यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति ।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ।।

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
मन्त्राधिकारो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।

—: ० :—

उससे परामर्श करे। उनमें से बहुसमर्थित तथा शीघ्र ही कार्यसिद्धि कर देने वाली राय के अनुसार कार्य सम्पादन करे।

(१) इस ढंग से कार्य करते हुए राजा के गुप्त रहस्यों को कोई बाहरी व्यक्ति नहीं जान पाता है, प्रत्युत वह दूसरों के दोषों की भी जान लेता है। राजा को चाहिए कि वह अपने गुप्त भावों को उसी प्रकार अपने मन में छिपाये रखे जिस प्रकार कि कछुआ अपने अंगों को छिपाये रखता है।

(२) जिस प्रकार वेदाध्ययन से शून्य ब्राह्मण किसी श्रेष्ठ पुरुष के यहाँ श्राद्ध नहीं कर सकता है, उसी प्रकार शास्त्रज्ञान से शून्य व्यक्ति मन्त्र को सुरक्षित नहीं रख पाता है।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में मन्त्राधिकार नामक
चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

दूतप्रणिधिः

(१) उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः। अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः, पादगुणहीनः परिमितार्थः, अर्धगुणहीनः शासनहरः।

(२) सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत। शासनमेवं वाच्यः परः, स वक्ष्यत्येवं, तस्येदं प्रतिवाक्यम्—एवमतिसन्धातव्यमित्यधीयानो गच्छेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत्। अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत। दुर्गराष्ट्रप्रमाणं सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत। पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्। शासनं च यथोक्तं ब्रूयात् प्राणाबाधेऽपि दृष्टे। परस्य वाचि वक्त्रे दृष्टयां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासङ्गमासन्नमासनं सत्कार-

संदेश देकर राजदूतों को शत्रु-देश में भेजना

(१) गुप्त मंत्रणा के निश्चित हो जाने पर ही दूत को शत्रुदेश की ओर भेजना चाहिए। दूत तीन प्रकार के होते हैं: १. निसृष्टार्थ, २. परिमितार्थ और ३. शासनहर। अमात्य के पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न निसृष्टार्थ, उनमें एक चौथाई गुणहीन परिमितार्थ और आधा गुणहीन शासनहर कहलाता है।

(२) पालकी आदि सवारी, घोड़े आदि वाहन, नौकर-चाकर और सोने-बिछाने आदि सामग्री की भली-भाँति व्यवस्था करके दूत को शत्रुदेश की ओर प्रस्थान करना चाहिये। दूत को पहिले ही से यह सोच-विचार कर लेना चाहिये कि 'मैं अपने स्वामी का सन्देश इस ढंग से कहूँगा; उसका यह उत्तर होगा तो मेरे प्रत्युत्तर की विधि इस प्रकार होगी; या किन-किन विधियों से उस शत्रु राजा को वश में करना होगा।' आदि-आदि। राजदूत को चाहिए कि वह शत्रुदेश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगरवासियों तथा जनपदवासियों से मित्रता गाँठे। साथ ही वह उभयपक्ष की सेनाओं के ठहरने योग्य युद्ध-भूमि और संयोग आने पर अपनी सेना के भाग सकने योग्य उपयुक्त स्थानों तथा रास्तों का भी निरीक्षण करे। साथ ही शत्रुपक्षी राजा के दुर्ग, उसके राज्य की सीमाएँ, आमदनी, उपज, आजीविका के साधन, राष्ट्ररक्षा के तरीके, वहाँ के गुप्त भेद एवं वहाँ की बुराइयों का पता लगाना भी दूत का ही कर्तव्य है। किसी शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व दूत, उस राजा की आज्ञा प्राप्त कर ले। प्राणान्तक परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी वह अपने स्वामी का संदेश अविकल रूप में कहे। यदि शत्रु राजा की वाणी में, मुखमुद्रा में, दृष्टि में प्रसन्नता झलकती हो; वह दूत की बातों को आदरपूर्वक सुन रहा हो; दूत

मिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत् तुष्टस्य। विपरीतमतुष्टस्य। तं ब्रूयात्—दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च। तस्मादुद्यतेष्वपि शस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारः तेषामन्तावसायिनोऽप्यवध्याः, किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणाः। परस्यैतद् वाक्यमेष दूतधर्मः इति।

(१) वसेदविसृष्टः; प्रपूजया नोत्सिक्तः; परेषु बलित्वं न मन्येत; वाक्यमनिष्टं सहेत; स्त्रियः पानं च वर्जयेत्; एकः शयीत; सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम्। कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानं रागापरागौ भर्तरि रन्ध्रं च प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यञ्जनाभ्यामुपलभेत। तयोरन्ते-वासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा, तेषामसम्भाषायां याचक-

---

को स्वेच्छया प्रश्न करने या अभीष्ट को प्रकट करने की स्वतन्त्रता हो; दूत के स्वामी राजा का कुशल-क्षेम तथा उसके गुणों के प्रति शत्रु राजा की उत्सुकता हो; दूत को वह आदरपूर्वक समीप ही बैठाये; राजकीय उत्सवों पर दूत को भी स्मरण करे और दूत के प्रत्येक कार्य पर शत्रु राजा का विश्वास हो; तो दूत को समझना चाहिए कि वह मुझ पर प्रसन्न है। यदि इसके विपरीत आचरण देखे, तो समझ ले कि शत्रु राजा उस पर रुष्ट है। इस प्रकार के रुष्ट हुए राजा से दूत कहे 'स्वामिन्, आप हों, अथवा दूसरे कोई भी राजा हों, दूत सभी का मुख होता है। उसी के माध्यम से राजा लोग पारस्परिक वार्ता-विनिमय करते हैं। इसलिए प्राणघातक स्थिति के आ जाने पर भी दूत सही संदेश ही निवेदित करते हैं। कोई चाण्डाल भी इस कार्य पर नियुक्त किया गया हो तो राजधर्म के अनुसार वह भी अवध्य है, उसी स्थान पर यदि ब्राह्मण हो तो उसके वध के सम्बन्ध में तो सोचा भी नहीं जा सकता है। दूसरे की कही हुई बात को ही दुहरा देना मात्र दूत का कार्य होता है।'

(१) जब तक शत्रुराजा उसे अपने राज्य से जाने की आज्ञा न दे तब तक वह वहीं रहे। शत्रुराजा द्वारा प्राप्त सम्मान पर वह गर्व न करे। शत्रुओं के बीच रहता हुआ अपने को वह बलवान् न समझे। किसी के कुवाक्य को भी वह पी ले। स्त्री-प्रसंग और मद्यपान को वह सर्वथा त्याग दे। अपने स्थान में एकाकी ही शयन करे। मद्य पीने तथा दूसरों के साथ शयन करने से प्रमादवश या स्वप्नावस्था में मन के गुप्त रहस्यों के प्रकट हो जाने का भय बना रहता है। दूत को चाहिये कि वह शत्रु-देश के कृत्यपक्ष को फोड़ देने का कार्य तथा अकृत्यपक्ष को वश में कर देने का कार्य अपने गुप्तचरों द्वारा जाने। राजा और अमात्य आदि उच्चाधिकारियों का पारस्परिक राग-द्वेग तथा राजा की बुराइयों का भेद वह तापस, वैदेहक आदि गुप्तचरों के द्वारा अवगत करे। अथवा तापस, वैदेहक आदि के शिष्यों, चिकित्सक तथा पाखण्डी के वेश में रहने वाले गुप्तचरों या उभयवेतनभोगी गुप्तचरों के द्वारा वह शत्रुराजा के रहस्यों का पता करता रहे। यदि इन गुप्तचरों से भी काम बनता न देखे तो, भिक्षुक, मत्त, उन्मत्त तथा सोते में प्रलाप करने वाले व्यक्तियों के माध्यम से शत्रु के

मत्तोन्मत्तसुप्तप्रलापैः पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत। उपलब्धस्योपजापमुपेयात्। परेण चोक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत। सर्वं वेद भवानिति ब्रूयात्, कार्यसिद्धिकरं वा।

(१) कार्यस्य सिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत्। किं भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन्, स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः, पार्ष्णिग्राहासारावन्तः—कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः, मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः, स्वं वा परतो विग्रहमन्तःकोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः, संसिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभिहन्तुकामः, सस्यकुप्यपण्यसङ्ग्रहं दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः, स्वसैन्यानां वा व्यायामदेशकालावाकाङ्क्षमाणः, परिभवप्रमदाभ्यां वा, संसर्गानुबन्धार्थी वा मामुपरुणद्धीति ज्ञात्वा वसेदपसरेद्वा। प्रयोजन-

---

कार्यों का पता लगाता रहे। तीर्थस्थानों, देवालयों, गृहचित्रों तथा लिपिसंकेतों द्वारा भी वह वहाँ के वृत्तान्त जाने। ठीक-ठीक समाचार अवगत हो जाने पर वह तदनुसार भेदरूप उपायों का प्रयोग करे। दूत को चाहिए कि शत्रु के पूछे जाने पर भी वह अपने मन्त्रिपरिषद् का ठीक-ठीक परिचय न दे। 'आप तो सर्वज्ञ हैं' इतना कहकर बात को टाल दे। यदि इतना बताने पर भी शत्रुराजा को सन्तोष न हो तो उतना मात्र परिचय देना चाहिये, जितने से अपने कार्य की सिद्धि हो जाय।

(१) कार्य सिद्ध हो जाने पर भी यदि शत्रुराजा दूत को अपने ही यहाँ रोके रखना चाहता है, तो दूत को, राजा की इस अप्रत्याशित नीति के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। उसको विचार करना चाहिए कि 'क्या शत्रुराजा को मेरे स्वामी पर आनेवाली किसी सन्निकट विपत्ति का पता लग गया है। या कि वह मेरे जाने से पूर्व ही अपने किसी व्यसन का प्रतीकार करना चाहता है। अथवा वह पार्ष्णिग्राह (स्वामिराजा का शत्रु एवं शत्रुराजा का मित्र) तथा आसार (शत्रुराजा के मित्र का मित्र) को मेरे स्वामी के विरोध में युद्ध करने के लिए तो नहीं उकसाना चाहता। या उसका इरादा मेरे स्वामी के अमात्य आदि को उससे कुपित करने का तो नहीं है। या कि वह किसी आटविक को भिड़ाने की साजिश तो नहीं रच रहा है। उसकी योजना ऐसी तो नहीं है कि वह मित्र (स्वामिराजा के सम्मुख प्रदेश का मित्रराजा) तथा आक्रंद (स्वामिराजा के पृष्ठप्रदेश का मित्र राजा) आदि मित्रराष्ट्रों के राजाओं को मरवाना चाहता हो। या अपने ऊपर किये गये आक्रमण का, अपने अमात्य आदि के कोप का तथा अपने आटविक का प्रतीकार तो नहीं करना चाहता है। या कि वह मेरे स्वामी के इस प्रस्तुत आक्रमण को टालने तथा रोकने का यत्न तो नहीं कर रहा है। अथवा वह युद्ध की तैयारी के लिए धातुसंग्रह, किलाबन्दी तथा सैन्य-संग्रह तो नहीं कर रहा है। या वह सैन्य-शिक्षण तथा उचित देश-काल की आकांक्षा में तो नहीं है। अथवा किसी प्रकार के तिरस्कार, प्रीति, विवाह-सम्बन्ध, दोष-वैमनस्य आदि के लिए तो वह मुझे नहीं रोक रहा है।'

720:6

मिष्टमवेक्षेत वा। शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवधभयादविसृष्टोऽप्यपगच्छेत्। अन्यथा नियम्येत।

(१) **प्रेषणं सन्धिपालत्वं प्रतापो मित्रसङ्ग्रहः।**
उपजापः सुहृद्भेदो दण्डगूढातिसारणम्॥
बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः॥

(२) **स्वदूतैः कारयेदेतत् परदूतांश्च रक्षयेत्।**
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः॥

इति कौटिलीयार्थशास्त्रे विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे
दूतप्रणिधिर्नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥

इस प्रकार के रहस्यों, कारणों और उद्देश्यों के सम्बन्ध में दूत अच्छी तरह से छान-बीन करे। रोके जाने के कारणों का ठीक-ठीक पता लग जाने पर वह उचित समझे तो रुके अन्यथा वहाँ से चल दें। अपने स्वामी की अभीष्ट-सिद्धि लिये वह चाहे तो उसी नगर में रुककर, गुप्त पुरुषों के द्वारा राजा तक सूचनाएँ पहुँचा कर, उनका प्रतीकार करवावे। अपने स्वामी का ऐसा संदेश, जिसको सुनकर शत्रुराजा क्रोधित हो उठे, सुनाने पर, दूत को बिना अनुमति लिये ही वहाँ से कूच कर देना चाहिए अन्यथा उसका पकड़ा जाना निश्चित है।

(१) शत्रुप्रदेश में अपने स्वामी का संदेश लेकर जाना; शत्रुराजा का संदेश लाने के लिए जाना, सन्धिभाव को बनाये रखना, समय आने पर अपने पराक्रम को दिखाना, अधिक से अधिक मित्र बनाना, शत्रु के कृत्यपक्ष के पुरुषों को फोड़ देना, शत्रु के मित्रों को उससे विमुख कर देना, तीक्ष्ण, रसद आदि गुप्तचरों एवं अपनी सेना को भगा देना, शत्रु के बांधवों एवं रत्नों का अपहरण (स्वायत्त) कर लेना, शत्रु के देश में रहकर गुप्तचरों के कार्यों का निरीक्षण करना, समय आने पर पराक्रम दिखाना, सन्धि की चिरस्थिति के निमित्त जमानत-रूप में रखे हुए राजकुमार को मुक्त कराना और मारण, मोहन, उच्चाटन आदि का प्रयोग करना, ये सभी दूत के कार्य हैं।

(२) राजा को चाहिये कि वह उपर्युक्त सभी कार्य दूतों के द्वारा करवाये और शत्रुओं के पीछे अपने दूतों या गुप्तचरों को लगाये रखे। अपने देश में तो वह शत्रु-दूतों के कार्यों का पता प्रकट रूप से लगाये, किन्तु शत्रुदेश में उनकी सूचनायें गुप्तरूप से संग्रह करवाये।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में दूतप्रणिधि नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

—: ० :—

प्रकरण १२

अध्याय १६

राजपुत्ररक्षणम्

(१) रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः परेभ्यश्च । पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ।

(२) दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः ।

(३) पुत्ररक्षणं जन्मप्रभृति राजपुत्रान् रक्षेत् । कर्कटकसधर्माणो हि जनकभक्षा राजपुत्राः ।

(४) तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयानिति भारद्वाजः ।

(५) नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रविनाशश्चेति विशालाक्षः । तस्मादेकस्थानावरोधः श्रेयानिति ।

(६) अहिभयमेतदिति पाराशराः । कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात् । तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयानिति ।

राजपुत्रों से राजा की रक्षा

(१) निकटवर्ती सम्बन्धियों तथा शत्रुओं से सुरक्षित राजा ही राज्य की रक्षा कर सकता है । राजा को चाहिये कि सर्वप्रथम वह अपनी रानियों और अपने पुत्रों से अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे ।

(२) रानियों से किस प्रकार राजा को आत्मरक्षा करनी चाहिये, इसके उपाय आगे निशान्तप्रणिधि प्रकरण में बताये जायेंगे ।

(३) अपने पुत्रों से आत्मरक्षा करने के लिए राजा को चाहिए कि वह जन्म से ही राजपुत्रों पर कड़ी निगरानी रखे, क्योंकि केकड़े की भाँति राजपुत्र भी अपने पिता के भक्षक होते हैं ।

(४) इस सम्बन्ध में आचार्य भारद्वाज का कहना है कि 'यदि राजकुमारों में पितृभक्ति की भावना न दिखाई दे तो तो उनका चुपचाप वध कर डालना ही श्रेयस्कर है ।'

(५) आचार्य विशालाक्ष इसको पापकर्म कहते हैं । उनका कथन है कि 'निरपराध बच्चों को इस प्रकार मरवा डालना घोर पाप और अतिक्रूरता है, इस प्रकार तो क्षत्रियवंश ही सर्वथा नष्ट हो जायगा । इसलिए यदि राजकुमारों में पितृभक्ति न दिखाई दे तो उन्हें किसी स्थान में कैद करके रखा जाना उचित है ।'

(६) आचार्य पराशर के अनुयायी इसके भी विरुद्ध हैं । उनका अभिमत है कि 'यह तो सर्पभय के समान है । जैसे घर में घुसा हुआ साँप भयावह होता है,

(१) औरभ्रकं भयमेतदिति पिशुनः। प्रत्यापत्तेर्हि तदेव कारणं ज्ञात्वान्तपालसखः स्यात्। तस्मात् स्वविषयादपकृष्टे सामन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति।

(२) वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः। वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात्। तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति।

(३) ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधिः। तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन्। तस्माद् ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः। सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति।

(४) जीवन्मरणमेतदिति कौटिल्यः। काष्ठमिव हि घुणजग्धं राज-

उसी प्रकार पुत्र को कैद में रखना भी भयप्रद है, क्योंकि राजकुमार को जब यह पता चल जायगा कि पिता ने अपने वध के भय से उसे कैद में डाल रखा है, तो वह पिता के घर में रहता हुआ सरलता से उसके वध की योजना तैयार कर सकता है। इसलिए राज्य की सीमा के दूरस्थ दुर्ग में ही राजकुमार को रखना श्रेयस्कर है।'

(१) आचार्य पिशुन (नारद) इस युक्ति से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि 'दूरस्थ दुर्ग में राजपुत्र को रखना उसी प्रकार भयावह है, जैसे आक्रमण करने से पूर्व मेढ़ा कुछ पीछे हट जाता है और पुनः दुगुने वेग से झपट पड़ता है। राजकुमार को जब अपने कैद होने का कारण विदित हो जायगा तो वह अपनी योजना को पूरा करने के लिए दुर्गपाल को मित्र बनाकर, उसकी सहायता से अपने पिता पर आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजकुमार को, राज्य की सीमा से बाहर किसी पड़ोसी (मित्र) राजा के दुर्ग में रखना ही अधिक उपयुक्त है।'

(२) आचार्य कोणपदंत की कुछ दूसरी ही स्थापना है। उनकी स्थापना है कि 'राजकुमार को परराज्याश्रित करने का परिणाम यह होगा कि जैसे गाय का बछडा दूसरे के हाथ में सौंप देने से इच्छानुसार वह कभी भी गाय को दुह सकता है, वैसे ही राजकुमार का संरक्षक पड़ोसी राजा, राजकुमार को अपने वश में करके उचित-अनुचित रीति से इच्छानुसार विजिगीषु से धन आदि ले सकता है। इसलिए राजकुमार को ननिहाल में रख देना ही उचित जान पड़ता है।'

(३) आचार्य वातव्याधि इस सलाह पर भी आपत्ति प्रकट करते हैं। उनका परामर्श है कि 'राजकुमार को उसके मातृकुल में रखना एक ध्वजा के समान है, जिसको मातृकुल वाले अपनी आमदनी का वैसा ही साधन बनाकर उपयोग कर सकते हैं, जैसा कि अदिति नाम की भिक्षुणी और कौशिक नाम के सँपेरे जीविका-निर्वाह के लिए अपने पेशेवर कौतुकों को दिखाते फिरते हैं। इसलिए राजकुमार को, उसकी इच्छानुसार, विषय-भोग में लिप्त रहने देना चाहिए, क्योंकि विषय-वासनाओं में उलझे हुए राजकुमारों को पिता से द्रोह करने का अवकाश ही नहीं मिलता है।'

(४) आचार्य कौटिल्य इस सिद्धान्त को, जीते-जी राजपुत्रों की हत्या कर देने

कुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। तस्मादृतुमत्यां महिष्याम् ऋत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः। आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजने च वियतेत। प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात्। समर्थं तद्विदो विनयेयुः।

(१) सत्रिणामेकश्चैनं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत्—पितरि विक्रम्य राज्यं गृहाणेति। तदन्यः सत्री प्रतिषेधयेद् इत्याम्भीयाः।

(२) महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटिल्यः। नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति। एवमयं नवबुद्धिर्यद्यदुच्येत तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति। तस्माद् धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च।

(३) सत्रिणस्त्वेनं तव स्म इति वदन्तः पालयेयुः। यौवनोत्सेकात् परस्त्रीषु मनः कुर्वाणमार्याव्यञ्जनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रा-

---

के समान अनर्थकारी बताते हैं। उनका कहना है 'राजकुमारों को इस प्रकार विषय-भोग में फँसाना उन्हें जीते ही मृत्यु के मुख में दे देना है। जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार अशिक्षित राजकुमारों का कुल बिना युद्ध आदि के ही विनष्ट हो जाता है। इसलिए राजा को चाहिए कि जब रानी ऋतुमती हो, तो (संतति की) ऐश्वर्य, विद्या, बुद्धि के निमित्त ऋत्विक्, इंद्र और बृहस्पति आदि देवताओं के लिये हविदान किया जाय। जब महारानी गर्भवती हो जाय तो कौमारभृत्य अंग के ज्ञाता शिशु-चिकित्सकों के निर्देशानुसार गर्भ की पुष्टि तथा उसके सुखपूर्वक प्रजनन के लिए यत्न किया जाय। राजकुमार के पैदा हो जाने पर विद्वान् पुरोहित विधिपूर्वक उसका संस्कार करें। जब वह समझने योग्य हो जावे तो विभिन्न विषयों के पारंगत विद्वान् उसको शिक्षा दें।'

(१) आचार्य आंभ के मतानुयायियों का कहना है कि 'सत्रियों (गुप्तचरों) में से कोई एक सत्री राजकुमार को मृगया, द्यूत, मद्य और स्त्रियों का प्रलोभन दे। यह भी कहे कि पिता पर आक्रमण करके तुम राज्य को ले लो, फिर मौज करो। इस पर दूसरा सत्री कहे ऐसा करना बहुत बुरा है।'

(२) आचार्य कौटिल्य के मतानुसार राजकुमार के भीतर यह कुबुद्धि जगाना बहुत ही अनिष्टदायी है। उनका तर्क एवं सुझाव है कि 'सरलमति बालकों में ऐसी कुबुद्धि पैदा करना महादोष कहा जायगा। जैसे मिट्टी का नया वर्तन घी, तेल आदि जिस भी नये द्रव्य का स्पर्श पाकर उसी को चूस लेता है, ठीक वैसे ही, अपरिपक्व बुद्धिवाले बालक को जो कुछ भी सिखाया जाता है, उसको वह शास्त्र-उपदेश की भाँति अमिट रूप से बुद्धि में जमा लेता है। इसलिये सरलमति बालकों को धर्म, अर्थ का ही उपदेश देना चाहिए, अधर्म, अनर्थ का नहीं।'

(३) सत्री लोग 'हम आपके ही हैं' इस अपनत्व को दर्शित करते हुए, राजपुत्र का पालन करें। यदि राजकुमार का युवा मन परस्त्री के लिए बेचैन हो उठता है

वुद्वेजयेयुः । मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः । द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेषुः । मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यञ्जनैस्त्रासयेयुः । पितरि विक्रमबुद्धिं तथेत्यनुप्रविश्य भेदयेयुः । अप्रार्थनीयो राजा, विपन्ने घातः, सम्पन्ने नरकपातः, संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति ।

(१) विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात् । बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत् । आत्मसम्पन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेत् ।

(२) बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः । शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् । उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः । अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः ।

तो उस समय उसके संरक्षकों को चाहिए कि आर्यावेश धारण की हुई अपवित्र, घृण्य स्त्रियों को रात्रि के एकांत में राजकुमार के निकट भेज कर उसके मन में ऐसी घृणा तथा खिन्नता पैदा करायें कि परस्त्री की चाह से उसका मन सर्वथा फिर जाय। यदि वह मद्य पीने की इच्छा करे तो मद्य में कोई ऐसा पदार्थ मिलाकर उसको दिया जाय, जिससे कि मद्य के लिए उसकी अरुचि हो जाय। यदि वह जुआ खेलने की कामना करे तो छली-कपटी लोगों के साथ बैठाकर उसको इतना उद्विग्न किया जाय कि आगे से वह जूआ खेलने का नाम भी न ले। यदि वह शिकार खेलना चाहता है तो कपटवेश धारण किये हुए राजपुरुष बेचैन करके उधर से उसके मन को खिन्न कर दें। यदि वह पिता पर आक्रमण करने की इच्छा रखता है तो पहिले तो उसे बढ़ावा दिया जाय किन्तु ऐन मौके पर उससे कहें 'देखो, राजा के साथ कभी द्वेष नहीं करना चाहिए। यदि तुम असफल हो गए तो तुम्हारी मृत्यु अवश्यंभावी है और जीत भी गए तो पितृघातक होने के कारण तुमको घोर नरक भोगना पड़ेगा, सारी प्रजा तुमको लानत देगी और कोई असंभव नहीं कि एकमत होकर प्रजा तुम्हारा प्राणान्त कर दे। इसलिए तुम्हे इस भयंकर पाप-कर्म से बचना चाहिए।'

(१) यदि एक ही राजपुत्र हो, और वह भी पितृद्रोही निकले तो उसे कैद कर देना चाहिए। यदि पुत्र अधिक हों तो उस द्रोही पुत्र को सीमांत प्रदेश अथवा किसी दूसरे देश में प्रवासित कर देना चाहिए, जहाँ कि उचित अन्न-वस्त्र प्राप्त न हो और जहाँ की प्रजा की उसके प्रति कोई सहानुभूति न हो। इसके विपरीत जो राजपुत्र आत्मगुणसंपन्न हो, उसको सेनापति या युवराज के उच्च पद पर नियुक्त किया जाय।

(२) राजपुत्रों की तीन श्रेणियाँ हैं : १. बुद्धिमान्, २. आहार्यबुद्धि और ३. दुर्बुद्धि। जो धर्म और अर्थविषयक उपदेश को उचित रीति से ग्रहण करके तदनुसार आचरण करता है, वह 'बुद्धिमान्' है। जो धर्म और अर्थ को समझ तो लेता है,

(१) स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य वियतेत । पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा । वृद्धस्तु व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत् । न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत् ।

(२) बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागि तु पूज्यते ॥

(३) कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः ।
अराजव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे राजपुत्ररक्षणं नाम
षोडशोऽध्यायः ॥

—: ० :—

किन्तु तदनुसार अपना आचरण नहीं बना पाता उसे 'आहार्यबुद्धि' कहते हैं । जो बुराइयों में लीन तथा धर्म और अर्थ से द्वेष रखता है वह 'दुर्बुद्धि' है ।

(१) यदि राजा का एक ही पुत्र हो और वह भी दुर्बुद्धि निकले तो राजा उस दुर्बुद्धि राजकुमार से ऐसा पुत्र पैदा कराने का यत्न करे, जो राजा बनने के योग्य हो । यदि ऐसा भी संभव न हो तो अपनी पुत्री के पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार सँभालने के योग्य बनाये । यदि राजा बूढ़ा हो गया हो, या सदैव रुग्ण ही रहता हो, तो अपने किसी ममेरे भाई अथवा अपने ही कुल के किसी बंधु से या किसी गुणवान सामंत से अपनी स्त्री में नियोग कराकर पुत्र पैदा करवावे । किन्तु अयोग्य अशिक्षित पुत्र को राज्यभार न सौंपे ।

(२) यदि अनेक पुत्रों में एक पुत्र दुर्बुद्धि हो तो उसे किसी दूसरे देश में भेज कर रोक रखे । वैसे राजा को चाहिए कि सर्वदा ही वह अपने पुत्रों की कल्याण-कामना करता रहे । यदि सभी पुत्र राजा को एक समान प्रिय हों, तो उस अवस्था में वह ज्येष्ठ पुत्र को ही राजा बनावे ।

(३) अथवा वे सभी भाई मिलकर राज्य को सँभालें, क्योंकि यदि राज्य का संचालन सामुदायिक ढंग से हुआ तो निश्चित ही वह राज्य दुर्जय होता है । सामुदायिक राज्य-व्यवस्था से एक बड़ा लाभ यह भी है कि एक व्यक्ति के व्यसनग्रस्त हो जाने पर दूसरे व्यक्ति उसके कार्य को सँभाल लेते हैं और इस प्रकार सर्वदैव प्रजा की सुखमय अवस्था पृथ्वी पर बनी रहती है ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में राजपुत्ररक्षण
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १३

अध्याय १७

अवरुद्धवृत्तम्, अवरुद्धे च वृत्तिः

(१) राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत, अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपपातकेभ्यः। पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत। पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत्। अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत्।

(२) तथाऽप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन् पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्याय आपृच्छेत्। बन्धवधभयाद् वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत। तत्रस्थः कोशदण्डसम्पन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासम्बन्धमटवीसम्बन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात्।

नजरबन्द राजकुमार और राजा का पारस्परिक व्यवहार

नजरबन्द राजकुमार का व्यवहार

(१) अपनी हैसियत से निम्न कार्य पर नियुक्त एवं कठिनाई से जीवन-यापन करने वाले राजपुत्र को चाहिए कि अपने पिता के आदेशों का वह पूर्णतः पालन करे। परन्तु किसी कार्य को करने में यदि प्राणभय, अमात्य आदि प्रकृतियों के कुपित होने का भय अथवा पातकभय हो तो राजपुत्र को चाहिए कि वह पिता के आदेशों का कदापि पालन न करे। किसी पुण्यकार्य में नियुक्त राजपुत्र अपने लिए एक संरक्षक (अधिष्ठाता) की माँग करे और उसके निर्देशानुसार वह राजा की आज्ञाओं का पालन करे। कार्य के अनुसार उसको जो कुछ फल प्राप्त हो और प्रजाजनों से उसको जो कुछ भी उपहार मिलें, उनको वह पिता के पास भिजवा दे।

(२) इस पर भी यदि राजा संतुष्ट न हो और दूसरे पुत्रों तथा स्त्रियों के साथ विशेष स्नेह-प्रेम प्रदर्शित करता रहे तो राजपुत्र को चाहिए कि वह अपने पिता की आज्ञा लेकर तपस्या आदि करने के लिए जंगल में चला जाय। अथवा ऐसा करने पर यदि उसको गिरफ्तार होने या मारे जाने का भय हो तो वह ऐसे राजा की शरण में चला जाय, जो न्यायपरायण, धार्मिक, सत्यवादी, धोखा न देनेवाला, शरणागत की रक्षा करनेवाला और आश्रय में आये हुए व्यक्ति का स्वागत-सत्कार करनेवाला हो। वहाँ रहकर वह धन-बल से संपन्न होकर किसी वीर पुरुष की कन्या से विवाह कर ले और तब अपने पिता के आटविक लोगों से मित्रता कर वहाँ के कृत्यपक्ष को अपने साथ मिलाने का यत्न करे।

(१) एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत् । पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसन्धायावहरेत । पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत् । मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत । कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डच्छद्मभिर्वा नष्टरूपस्तद्वच्चञ्जनसखश्छिद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात्—अहमसौ कुमारः, सहभोग्यमिदं राज्यमेको नार्हति भोक्तुं, तत्र ये कामयन्ते भर्तुं तानहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्य इति, इत्यवरुद्धवृत्तम् ।

(२) अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः, माता वा प्रतिगृहीता । त्यक्तं गूढपुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः । अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्यानयेयुः ।

---

(१) यदि राजपुत्र को धन-बल की उपलब्धि न हो तो वह रासायनिक कर्मों के द्वारा मणि, मुक्ता, सुवर्ण, चाँदी आदि विक्रेय पदार्थों को बनाकर उनके अथवा दूसरे खनिज पदार्थों के व्यापार द्वारा अपनी जीविका चलाये। अथवा पाखंडी, अधर्मी पुरुषों की संचित कमाई को श्रोत्रिय के अतिरिक्त दूसरे लोगों के भोग्य द्रव्य को, देव-निमित्तक द्रव्य को या किसी धन-सम्पन्न विधवा के द्रव्य को चोरी करके अपना जीविकोपार्जन करे । या जहाजी व्यापारियों को औषधि आदि से बेहोश कर उन्हें धोखा देकर उनके धन का अपहरण करे । अथवा विजिगीषु राजा जब किसी दूसरे गाँव को चला जाय, तब उसके यहाँ से धन का अपहरण करे, अथवा अपनी माता के परिजनों को अपने अनुकूल बनाकर उनके द्वारा अपने उद्धार की चेष्टा करे । अथवा बढ़ई, लुहार, नट, वैद्य, भाट, कथावाचक, पाखंडी आदि पुरुषों के साथ अपने वेश को छिपाकर, किन्तु उनके सदृश न बनकर, अपने पिता के दोषों का पता लगाकर उन्हीं को पकड़ कर शस्त्र या जहर के द्वारा राजा को मारकर फिर अमात्य आदि से वह इस प्रकार कहे : 'मैं ही असली राजकुमार हूँ, साझे में भोगे जाने वाले राज्य को कोई भी अकेले नहीं भोग सकता है, जो राजकर्मचारी पूर्ववत् शान्ति से अपने पदों पर बने रहना चाहते हैं, उन्हें मैं दुगुना वेतन दूंगा ।' यहाँ तक नज़रबन्द राजकुमार के व्यवहार का निरूपण किया गया ।

राजकुमार के प्रति राजा का व्यवहार

(२) अमात्य आदि मुख्य पुरुषों के पुत्र गुप्तरूप में जाकर नजरबन्द राजकुमार को यह दिलासा देकर मना ले आवें कि राजा उसको अवश्य ही युवराज बनायेगा । या राजा से सत्कृत राजपुत्र की माता ही उसको मना ले आवे । यदि वह राजपुत्र किसी भी तरीके से राजा का कहना न माने तो उस दशा में राजा को यही उचित

(१)　**उपस्थितं च राज्येन मदूर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।**
एकस्थमथ संरुन्ध्यात् पुत्रवान् वा प्रवासयेत् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणेऽवरुद्धवृत्तमवरुद्धे च
वृत्तिर्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥

—: ० :—

है कि उस सर्वथा परित्याज्य राजपुत्र को वह गुप्तचरों से शस्त्र या विष आदि के द्वारा मरवा डाले । यदि अभी तक राजा ने उसका परित्याग न किया हो तो ऐसी स्थिति में समान स्वभाव वाली स्त्रियों के द्वारा मद्य आदि पिलाकर या शिकार आदि के बहाने रात में गिरफ्तार कर उसको राजा के सामने लाये जाने का यत्न किया जाय ।

(१) अपने पास लाये जाने पर राजा उस राजकुमार से कहे कि 'मेरे बाद इस राज्य के स्वामी तुम्हीं बनोगे' ऐसा कहकर संतुष्ट करे । यदि वह एक ही पुत्र हो और अधार्मिक साबित हो तो उसे बन्दी बनाकर रखे और यदि अनेक पुत्र हों तो उसको देशनिकाला दे दे या मरवा डाले ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अवरुद्धवृत्त नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १४

अध्याय १८

राजप्रणिधिः

(१) राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः। प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति। कर्माणि चास्य भक्षयन्ति। द्विषद्भिश्चातिसन्धीयते। तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत। नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं च विभजेत्; छायाप्रमाणेन वा। त्रिपौरुषी पौरुषी चतुरङ्गुला च च्छाया मध्याह्न इति चत्वारः पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः। तैः पश्चिमा व्याख्याताः।

(२) तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च शृणुयात्। द्वितीये पौरजानपदानां कार्याणि पश्येत्। तृतीये स्नानभोजनं सेवेत;

राजा के कार्य-व्यापार

(१) राजा के उन्नतिशील होने पर ही उसका सारा भृत्यवर्ग उन्नतिशील होता है। इसके विपरीत राजा के प्रमादी होने पर सारा भृत्यवर्ग प्रमाद करने लगता है। उस दशा में वह प्रमादित भृत्यवर्ग राज्यकार्यों को चुपचाप पी जाता है। ऐसा राजा शत्रुओं के धोखे में आ जाता है। इसलिए राजा को उचित है कि वह अपने आपको सदा ही उन्नतिशील बनाये रखे। राजकार्य को व्यवस्थित ढंग से संचालित करने के लिए वह दिन और रात को आठ-आठ घड़ियों में बाँट दे। अथवा पुरुष की छाया से भी वह समय का विभाजन कर सकता है। सूर्योदय से लेकर जब तक पुरुष की छाया तिगुनी लंबी रहे, वह दिन का पहिला आठवाँ हिस्सा है। इस छाया को 'त्रिपौरुषी' छाया कहते हैं। इसी प्रकार वह छाया जब एक पुरुष के बराबर लंबी रह जाय तो, वह दिन का दूसरा भाग है। उसको 'एकपौरुषी' छाया कहते हैं। तदनंतर वही 'एकपौरुषी' छाया घटकर जब चार अंगुल मात्र रह जाय तो वह दिन का तीसरा भाग है। उसको 'चतुरंगुली' छाया कहते हैं। उसके बाद का समय मध्याह्न कहलाता है। दिन का यह चौथा भाग है। मध्याह्न के उपरांत इसी क्रम से त्रिपौरुषी, पौरुषी, चतुरंगुला और दिनांत, ये चार भाग हैं। इस प्रकार दिन के ये आठ भाग हुए।

(२) पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा-संबंधी कार्यों का निरीक्षण करे और बीते हुए दिन के आय-व्यय की जाँच करे। दूसरे भाग में वह पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरीक्षण करे। तीसरे भाग में स्नान, भोजन तथा स्वाध्याय

स्वाध्यायं च कुर्वीत। चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत। पञ्चमे मन्त्रिपरिषदा पत्रसम्प्रेषणेन मन्त्रयेत; चारगुह्यबोधनीयानि च बुद्धचेत। षष्ठे स्वैरविहारं मन्त्रं वा सेवेत। सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान् पश्येत्। अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत्। प्रतिष्ठितेऽहनि सन्ध्यामुपासीत।

(१) प्रथमे रात्रिभागे गूढपुरुषान्पश्येत्। द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत स्वाध्यायं च। तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टश्चतुर्थपञ्चमौ शयीत। षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत्। सप्तमे मन्त्रमध्यासीत; गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत्। अष्टमे ऋत्विगाचार्यपुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात्; चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत्। सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत्।

(२) आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान् प्रविभज्य कार्याणि सेवेत।

करे और चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को सँभाले तथा उसी भाग में विभिन्न कार्यों पर अध्यक्ष आदि की नियुक्ति भी करे। उत्तरार्ध के पाँचवें भाग में वह मंत्रि-परिषद् के परामर्श से पत्र भेजे तथा आवश्यक कार्यों के संबंध में विचार-विनिमय करे। इसी समय वह गुप्तचरों के कार्यों एवं गुप्त बातों के संबंध में जाने-सुने। छठे भाग में वह स्वतंत्र होकर स्वेच्छया विहार तथा विचार करे। सातवें भाग में वह हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण करे। अंतिम आठवें भाग में वह सेनापति के साथ युद्ध आदि के संबंध में विचार-विमर्श करे। दिनांत के बाद वह संध्योपासन करे।

(१) इसी प्रकार रात्रि के पहिले भाग में वह गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय, तीसरे भाग में संगीत सुनता हुआ शयन करे और चौथे पाँचवें भाग तक सोता रहे। रात्रि के छठे भाग में संगीत के द्वारा जागा हुआ वह अर्थशास्त्रसंबंधी तथा दिन में संपादित किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे। सातवें भाग में गुप्त-मंत्रणा करे और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे। रात्रि के अंतिम आठवें भाग में ऋत्विक्, आचार्य तथा पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन-सहित आशीर्वाद ग्रहण करे। इसी समय वह वैद्य, प्रधान रसोइयाँ और ज्योतिषी आदि से भी तत्संबंधी बातों पर परामर्श करे। इन सब कार्यों से निवृत हो वह बछड़े वाली गाय और बैल की प्रदक्षिणा करके राज-दरबार में प्रवेश करे।

(२) ऊपर का काल-विभाग सामान्य-दृष्टि से निरूपित किया गया है, वैसे शक्ति तथा अनुकूल परिस्थितियो के अनुसार स्वेच्छया राजा अपनी कार्य-व्यवस्था को स्वयं भी निर्धारित कर सकता है।

(१) उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासङ्गं कारयेत् । दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते । तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत् । तस्माद्देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधित-व्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत्; कार्यगौरवादात्ययिक-वशेन वा ।

(२) सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत् ।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्यं वा विजायते ।।

(३) अग्नयगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ।।

(४) तपस्वितां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत् ।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ।।

---

(१) राजा जब दरबार में हो तो प्रत्येक कार्यार्थी को वह बिना रोक-टोक प्रवेश करने की अनुमति दे दे । क्योंकि जो राजा कठिनाई से प्रजा को दर्शन देता है, उसके समीप रहने वाले कर्मचारी उसके कार्यों को उलट-पलट कर देते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि राजा के अमात्य आदि उससे कुपित हो जाते हैं, राजकार्य शिथिल पड़ जाते हैं, राजा अपने शत्रुओं के अधीन हो जाता है । इसलिए राजा को उचित है कि देवालय, ऋषि-आश्रम, धूर्तपाखंडियो के केंद्र, वेदपाठी ब्राह्मणों के संस्थान, पशुशाला आदि स्थानों का और बाल, वृद्ध, रुग्ण, दुखित, अनाथ तथा स्त्रियों से संबद्ध कार्यों का स्वयमेव विधिपूर्वक निरीक्षण करे । इनमें से यदि कोई कार्य अत्यावश्यक है, अथवा उसकी अवधि बीत रही है तो उसी का निरीक्षण राजा पहिले करे ।

(२) राजा को चाहिए कि पहिले वह उस कार्य को देखे, जिसकी मियाद बहुत बीत चुकी है । उसको देखने में वह अधिक विलंब न करे । क्योकि इस प्रकार अवधि बीत जाने पर कार्य या तो कष्टसाध्य हो जाता है अथवा सर्वथा असाध्य हो जाता है ।

(३) राजा को चाहिए कि पुरोहित एवं आचार्य के साथ यज्ञशाला में उप-स्थित होकर उन विद्वानों और तपस्वियों के कार्यों को खड़े ही खड़े अभिवादन-पूर्वक देखे ।

(४) तपस्वियों तथा मायावी लोगों के कार्यों का निर्णय राजा, अकेला न करके वेदविद् विद्वानों के साथ बैठकर करे । अकेले वह उन लोगों के कोप का कारण न बने ।

(१) राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम् ।
दक्षिणा वृत्तिसाम्यं च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥
(२) प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रिय हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥
(३) तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम् ।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥
(४) अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च ।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते चार्थसम्पदम् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे राजप्रणिधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ।

—: ० :—

---

(१) उद्योग करना, यज्ञ करना, अनुशासन करना, दान देना, शत्रु और मित्रों में—उनके गुण-दोषों के अनुसार समान व्यवहार करना, दीक्षा समाप्त कर अभिषेक करना, ये सब राजा के नैमित्तिक व्रत हैं ।

(२) प्रजा के सुख में राजा का सुख और प्रजा के हित में राजा का हित है । अपने आप को अच्छे लगने वाले कार्यों को करने में राजा का हित नहीं, बल्कि उसका हित तो प्रजाजनों को अच्छे लगने वाले कार्यों के संपादन करने में है ।

(३) इसलिए राजा को चाहिए कि उद्योगशील होकर वह व्यवहार-संबंधी तथा राज्य-संबंधी कार्यों को उचित रीति से पूरा करे । उद्योग ही अर्थ का मूल है, और इसके विपरीत, उद्योगहीनता ही अनर्थों को देने वाली है ।

(४) राजा यदि उद्योगी न हुआ तो उसके प्राप्त अर्थों और प्राप्तव्य अर्थों, दोनों का ही नाश हो जाता है; किंतु जो राजा उद्योगी है, वह शीघ्र उद्योग का मधुर फल पाता है और इच्छित सुख-संपदा का उपभोग करता है ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १५

अध्याय १९

निशान्तप्रणिधिः

(१) वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत् ।

(२) कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं, गूढभित्तिसञ्चारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं, भूमिगृहं वाऽऽसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुङ्गासञ्चारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा, वासगृहं यन्त्रवद्धतलावपातं कारयेद् आपत्प्रतीकारार्थम् । आपदि वा कारयेत् । अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत्; सहाध्यायिभयात् ।

(३) मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तःपुरमग्निरन्यो न

राजभवन का निर्माण और राजा के कर्त्तव्य

(१) वास्तुविद्या के विशेषज्ञ (इञ्जीनियर) जिस स्थान को उपयुक्त बतायें, उसी स्थान पर ऐसे अन्तःपुर का निर्माण कराना चाहिये, जिसके चारों ओर परकोटा एवं खाई और जिसमें अनेक ड्यौढ़ियाँ हो ।

(२) या कोशागार-निर्माण के विधानानुसार अन्तःपुर के बीच में राजा अपना महल बनवावे, या ऐसा मकान बनवाये, जिसकी दीवालों तथा गलियों (रास्तों) का पता न लगे, ऐसे मकान को मोहनगृह (भूलभुलैया) कहते हैं, उसके बीच में राजा अपने रहने का मकान बनवाये, या भूमि को खुदवा कर उसमें घर बनवाये, उस भूमिगृह के दरवाजे पर, समीप ही किसी देवता की मूर्ति स्थापित करवाये, उसमें जाने-आने के लिए गुप्त सुरंगें हों, या तो फिर ऐसा महल बनवाये, जिसकी दीवारों के भीतर गुप्त मार्ग हो, अथवा पोले खंभों के भीतर आने-जाने तथा चढ़ने-उतरने का रास्ता हो, अथवा आपत्तिकाल के निवारण के लिए यन्त्रों के आधार पर ऐसा वासगृह बनवाये जिसको इच्छानुसार नीचे-ऊपर तथा इधर-उधर हटाया जा सके, अथवा आपत्तिकाल के उपस्थित हो जाने पर ऐसे भवन का निर्माण करवाये। यदि राजा को इस बात की आशंका हो कि उसके समान ही दूसरा शत्रु राजा भी नीति-निपुण वास्तुकलाविद् है और वह गुप्तभवन-निर्माणसम्बन्धी सभी रहस्यों को जानता है तो वह अपनी बुद्धि के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दे ।

(३) मनुष्य की हड्डी में बांस के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि का स्पर्श, यदि अथर्व-

दहति; न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति; वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन कनकवारिणाऽवलिप्तं च।

(१) जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते। मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान्भक्षयति। शुकः शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशङ्कायां क्रोशति। क्रौञ्चो विषाभ्याशे माद्यतिः ग्लायति जीवञ्जीवकः; म्रियते मत्तकोकिलः; चकोरस्याक्षिणी विरज्येते। इत्येवम् अग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत।

(२) पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था वृक्षोदकस्थानं च। बहिः कन्याकुमारपुरम्। पुरस्तादलङ्कारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थानं च। कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्यं तिष्ठेत्।

वेद के मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ बांई ओर से तीन परिक्रमा करते हुए, कराया जाय तो उस अंतःपुर को आग नहीं जला सकती; और न दूसरी अग्नि ही वहाँ जल सकती है। बिजली के गिरने से जले हुए पेड़ की राख लेकर उसमें उतनी ही मिट्टी मिला दी जाय और दोनों को धतूरे के पानी के साथ गूंथकर यदि उसका दीवारों पर लेपन किया जाय तब भी वहाँ दूसरी अग्नि असर नहीं कर सकती है।

(१) गिलोय, शंखपुष्पी, कालीपांढरी और करौंदे के पेड़ पर लगे हुए बंदे की माला आदि के रख देने; अथवा सहिजन (सैंजन) के पेड़ के ऊपर पैदा हुए पीपल के पत्तो के बंदनवार बाँध देने से अंतःपुर में सर्प, विच्छू आदि विषैले जंतुओं तथा दूसरे विषों का कोई प्रभाव नहीं होता है। बिल्ली, मोर, नेवला और मृग आदि भी साँपों को खा जाते हैं। अन्न आदि में सर्प-विष की आशंका होने पर तोता, मैना और बड़ा भौंरा चिल्लाने लगते हैं। विष के समीप होने पर क्रौंच पक्षी विह्वल हो जाता है। जीवंजीव (चकोर के समान एक पक्षी) नामक पक्षी जहर को देखकर मुरझा जाता है। कोयल विष को देखकर मर जाती है। विष को देखकर चकोर की आँखें लाल हो जाती हैं। इन सब उपायों के द्वारा राजा अपने आप को तथा अंतःपुर को अग्नि, सर्प और विष के भय से बचा कर रखे।

(२) राजमहल के पीछे कक्ष्याभाग में रनिवास, उसके समीप ही प्रसूता, बीमार तथा असाध्य रोगिणी स्त्रियों के लिए अलग-अलग तीन आवास बनवाये जायँ और उन्हीं के साथ छोटे-छोटे उद्यान तथा सरोवरों का निर्माण किया जाय। बाहर की ओर राजकुमारियों और युवक राजकुमारों के लिए स्थान बनवाये जायँ। राजमहल के आगे हरी-हरी घास और फूलों से सजे हुए उपवन होने चाहिए। उसके

(१) अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत् । न काञ्चिदभिगच्छेत् । देवीगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान; मातुः शय्याऽन्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम् । लाजान् मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजं, त्रिषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं, मेखलामणिना सौवीरं, जालूथमादर्शेन, वेण्यां गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विडूरथं जघान । तस्मादेतान्यास्पदानि परिहरेत् ।

(२) मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्याभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् । न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः । रूपाजीवाः स्नानप्रवर्षशुद्धशरीराः परिवाततवस्त्रालङ्काराः पश्येयुः । आशीतिकाः पुरुषाः पञ्चाशत्काः स्त्रियो वा मातापितृव्यञ्जनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः, स्थापयेयुश्च स्वामिहिते ।

बाद मंत्रसभा का स्थान, फिर दरबार और तदनन्तर युवक राजकुमार, समाहर्त्ता-सन्निधाता आदि अध्यक्षों के प्रधान कार्यालय होने चाहिए । कक्ष्याओं के बीच-बीच में कंचुकी तथा अंतःपुररक्षकों की उपस्थिति रहे ।

(१) रनिवास के अंदर जाकर राजा किसी विश्वस्त बूढ़ी परिचारिका के साथ महारानी से मिले । अकेला किसी रानी के पास न जाये, क्योंकि ऐसा करने में कभी कभी बड़ा धोखा हो जाता है । कहा जाता है कि पहले कभी भद्रसेन नामक राजा के भाई वीरसेन ने उसकी रानी से मिलकर छिपे में भद्रसेन राजा को मार डाला था । इसी प्रकार माता की शय्या के नीचे छिपे हुए राजकुमार ने अपने पिता कारूश को मार डाला था । इसी प्रकार काशीराज की रानी ने धान की खीलों में मधु के बहाने विष मिलाकर अपने पति को मार डाला था । इसी भाँति विष में बुझे नूपुर के द्वारा वैरन्त्य राजा को और विष-बुझी करधनी की मणि से सौवीर राजा को, शीशे के द्वारा जालूथ राजा को और अपनी बेणी में शस्त्र छिपाकर बिडूरथ राजा को, उनकी रानियों ने धोखे में मार डाला था । इसलिए रानियों से मिलते समय, राजा को इस प्रकार की अदृष्ट विपत्तियों से सावधान रहना चाहिए ।

(२) राजा को चाहिए कि वह मुंडी, जटी इसी प्रकार के अन्य धूर्त और बाहर की दासियों के साथ रानियों का संपर्क न होने दे । रानियों के सगे-संबंधी भी उन्हें प्रसव या बीमारी की अवस्था के अतिरिक्त न देखने पावें । स्नान, उबटन के बाद सुंदर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर वेश्याएँ राजा के निकट जायँ । अस्सी वर्ष की अवस्था के पुरुष तथा पचास वर्ष की बूढ़ी स्त्रियाँ माता-पिता की भाँति रानियों के हितचिंतन में रत रहें । अतःपुर के दूसरे वृद्ध तथा नपुंसक पुरुष रानियों के चरित्र का ध्यान रखें और उनको राजा की हितकामना में लगाये रखें ।

(१) **स्वभूमौ च वसेत् सर्वः परभूमौ न सञ्चरेत् ।**
न च बाह्येन संसर्गं कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥

(२) **सर्वं चावेक्षितं द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम् ।**
निर्गच्छेदधिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिकम् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे निशान्तप्रणिधि-
र्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

—: ० :—

---

(१) अंत.पुर के सभी परिचारक-परिचारिकायें अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, एक दूसरे के स्थान पर न जाने पावें । इसी प्रकार भीतर का कोई भी आदमी बाहर के आदमियों से न मिलने पावे ।

(२) जो भी वस्तु महल से बाहर आवे तथा महल में जावे उसका भली-भाँति निरीक्षण कर और उसके संबंध के सारे विवरण रजिस्टर में लिख देने चाहिए । राजमहल के बाहर और भीतर जाने-आने वाली प्रत्येक वस्तु पर राजकीय मुहर लग जानी चाहिए ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—

प्रकरण १६

अध्याय २०

आत्मरक्षितकम्

(१) शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत; द्वितीयस्यां कक्ष्यायां कञ्चुकोष्णीषिभिर्वर्षवराभ्यागारिकैः, तृतीयस्यां कुब्जवामनकिरातैः, चतुर्थ्यां मन्त्रिभिः सम्बन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः।

(२) पितृपैतामहं महासम्बन्धानुबन्धं शिक्षितमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत; नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाप्यपकृत्योपगृहीतम्। अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तःपुरं च रक्षेत्।

(३) गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत्। तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत, पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा।

आत्मरक्षा का प्रबंध

(१) प्रातःकाल राजा के बिस्तर से उठते ही, धनुष-बाण लिये स्त्रियाँ उन्हें घेर लें। शयनकक्ष से उठकर राजा जब दूसरे कक्ष में प्रवेश करे तो वहाँ कुर्ता, पगड़ी पहिने हुए नपुंसक तथा दूसरे सेवक राजा की देख-रेख के लिए उपस्थित रहें। तीसरे कक्ष में कुबड़े, बौने एवं निम्न जाति के परिजन राजा की रक्षा करें। चौथे कक्ष में मंत्रियों, संबंधियों और हाथ में भाला लिये द्वारपालों द्वारा राजा की रक्षा होनी चाहिए।

(२) वंश-परंपरा से अनुगत, उच्चकुलोत्पन्न, शिक्षित, अनुरक्त और प्रत्येक कार्य को भली-भाँति समझने वाले पुरुषों को राजा अपना अंगरक्षक नियुक्त करे। किंतु धन-संमान-रहित विदेशी व्यक्ति को तथा एक बार पृथक् होकर पुनः नियुक्त स्वदेशीय व्यक्ति को भी राजा अपना अंगरक्षक कदापि नियुक्त न करे। राजमहल की भीतरी सेना राजा और रनिवास की रक्षा करे।

(३) माहानसिक (पाकशाला का अध्यक्ष या निरीक्षक) को चाहिए कि वह किसी एकांत स्थान में भोज्य पदार्थों का स्वाद ले-लेकर उन्हें सुस्वादु तथा सुरक्षा से तैयार कराये। भोजन के तैयार हो जाने पर राजा पहिले अग्नि तथा पक्षियों को बलि प्रदान कर, फिर स्वयं खावे।

(१) अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य, वयसां विपत्तिश्च। अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशु क्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च। व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथः श्यामफेनपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च। द्रवेषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनं फेनपटलसीमान्तोर्ध्वराजीदर्शनं च। रसस्य मध्ये नीला राजी, पयसस्ताम्रा, मद्यतोययोः काली, दध्नः श्यामा, मधुनः श्वेता च। द्रव्याणामार्द्राणामाशुप्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः क्वाथनीलश्यामता च। शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च। कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च। तदभ्याशे क्षुद्रसत्त्ववधश्च। आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च। लोहमणिमयानां पङ्कमलोपदेहता स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णस्पर्शवधश्च। इति विषयुक्तलिङ्गानि।

विषमिश्रित पदार्थों की पहिचान

(१) जिस अन्न में विष मिला हो उसे अग्नि में डालने से अग्नि और लपट, दोनों नीले रंग के हो जाते हैं तथा उसमें चट-चट का शब्द होता है। विषमिश्रित अन्न के खाने पर पक्षियों की भी मृत्यु हो जाती है। विषयुक्त अन्न की भाफ मयूर-ग्रीवा जैसे रंग की होती है; वह भोजन शीघ्र ही ठंडा हो जाता है; हाथ के स्पर्श या तोड़ने-मोड़ने से उसका रंग बदल जाता है, उसमें गाँठ-सी पड़ जाती है, और वह अन्न अधपका ही रह जाता है। विष मिली दाल जल्दी ही सूख जाती है, फिर से आँच पर रखा जाय तो मट्ठे की तरह वह फट जाती है, उसकी झाग काली तथा वह अलग-अलग हो जाती है, और उसका स्वाद, स्पर्श, उसकी सुगंध आदि सब जाते रहते हैं। विषयुक्त रसेदार तरकारी विरंगी-विकृत हो जाती है, उसका पानी अलग तैरता रहता है, और उसके ऊपर रेखा-सी खिच जाती है। यदि घी, तेल आदि रसिक पदार्थों में विष मिला हो तो उनमें नीले रंग की रेखाएँ तैरने लगती हैं, विष-मिश्रित दूध में ताम्रवर्ण की, शराब तथा पानी में काले रंग की, दही में श्यामवर्ण की और शहद में सफेद रंग की रेखाएँ दिखाई देती हैं। आम, अनार आदि द्रव्यों में विष मिला हो तो वे सिकुड़ जाते हैं, उनमें सडांध आने लगती है, और पकाने पर उनका वर्ण कुछ कालापन एवं भूरापन लिये होता है। यदि सूखे हुए पदार्थों में विष मिला हो तो वे छूते ही चूर-चूर होकर विवर्ण हो जाते हैं। विषमिश्रित ठोस पदार्थ मुलायम और मुलायम पदार्थ ठोस हो जाता है। विषमय वस्तु के समीप रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े मर जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के कपड़ों पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनमें स्थान-स्थान पर धब्बे पड़ जाते हैं। यदि कपड़ा सूती हुआ तो उसका सूत और ऊनी हुआ तो उसकी रुआँ उड़ जाती है। सोने, चाँदी,

(१) विषप्रदस्य तु शुष्कश्यामवक्त्रता वाक्सङ्गः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेशः कर्मणि स्वभूमौ चानवस्थानमिति ।

(२) तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः ।

(३) भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोषकाभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत् । पानं पानीयं चौषधेन व्याख्यातम् ।

(४) कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ताः समुद्रमुपकरणमन्तर्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः ।

(५) स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमालाकारकर्म दास्यः कुर्युः;

स्फटिक मणि आदि धातुओं पर यदि विष का प्रयोग किया गया हो तो उनकी आभा पंकिल दिखाई देती है, उनकी चमक, भारीपन और पहिचान आदि सब जाते रहते हैं। यहाँ तक विषमिश्रित पदार्थों के पहिचान की विधियों का निरूपण किया गया है।

विष देने वाले की पहिचान

(१) विष देने वाले का मुँह सूख जाता है, उसके चेहरे का रंग बदल जाता है, बात-चीत करते हुए उसकी वाणी लड़खड़ाने लगती है, उसको पसीना, कंपकंपी तथा जंभाई आने लगती है, बेचैन होकर वह गिर पड़ता है, संदेहवश दूसरों की बातें वह ध्यानपूर्वक सुनने लगता है, बात-बात में वह आवेश करने लगता है; अपने कार्य और अपने स्थान पर उसका मन स्थिर नहीं रह पाता है।

(२) इसलिए विषविद्या के जानकार और वैद्य राजा के समीप अवश्य रहें।

(३) वैद्य को चाहिए कि औषधालय में स्वयं खाकर परीक्षा की हुई औषधि को वह राजा के सामने लाकर उसमें से कुछ को पकाने-पीसने वाले लोगों को और कुछ स्वयं भी खाकर पुनः राजा को दे। इसी प्रकार जल तथा मद्य को भी, परीक्षा करने के उपरांत, राजा को देना चाहिए।

परिजनों के कर्त्तव्य

(४) दाढ़ी-मूंछ बनाने वाले नाई तथा वस्त्रालंकरण धारण कराने वाले परिचारकों को चाहिए कि वे स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण किये हाथों को अच्छी तरह धोकर राजमहल के अंदर रहने वाले कंचुकी आदि से मुहर लगे हुए उस्तरा और वस्त्राभूषण को लेकर राजा की परिचर्या करें।

(५) राजा को स्नान कराना, उसके अंगों को दबाना, बिस्तर बिछाना, कपड़े

ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः। आत्मचक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः; स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवासस्नानीयानि स्ववक्षोबाहुषु च। एतेन परस्मादागतकं व्याख्यातम्।

(१) कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः। आतोद्यानि चैषामन्तस्तिष्ठेयुः, अश्वरथद्विपालङ्काराश्च।

(२) मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमारोहेत्; नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम्। अन्यनौप्रतिबद्धां वातवेगवशां च नोपेयात्। उदकान्ते सैन्यमासीत। मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत। व्यालग्राहपरिशुद्धमुद्यानं गच्छेत्।

(३) लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधभयं चललक्षपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत्।

(४) आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत्; मन्त्रिपरिषदा सामन्तदूतम्। सन्नद्धोऽश्वं हस्तिनं रथं वाऽऽरूढः सन्नद्धमनीकं गच्छेत्।

धोना और माला बनाना आदि कार्यों को दासियाँ ही करें, अथवा दासियों की देख-रेख में उस कार्य के जानकार लोग करें। दासियों को चाहिए कि अपनी आँखों से देखकर ही वे राजा को वस्त्रालंकरण पहिनावे। स्नान के समय उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं, जैसे—उबटन, चंदन, सुगन्धित चूर्ण (पाउडर) तथा पटवास आदि को, दासियाँ पहिले अपनी छाती एवं बाँह पर लगाकर अजमा लें और तदनंतर राजा पर उनका प्रयोग करें। यही बात दूसरे स्थान से आई हुई वस्तुओं के संबंध में भी जान लेनी चाहिए।

(१) खेल दिखाने वाले नट-नर्तक, हथियार, आग, विष आदि के अतिरिक्त दूसरे खेलों को ही राजा के सामने दर्शित करें। नट-नर्तकों के उपयोग में आने वाली सामग्री, जैसे—बादन, वस्त्र, घोड़े, अलंकरण आदि, राजमहल से ही दी जानी चाहिए।

(२) विश्वस्त प्रधान पुरुष के साथ होने पर ही राजा पालकी तथा घोड़े आदि यान-वाहनों पर चढ़े। विश्वस्त नाविक के रहने पर ही नौका पर चढ़े। दूसरी नाव पर बंधी एवं वायु से चालित नाव पर वह कदापि न बैठे। राजा जब नौका-बिहार करे तो, सुरक्षा के लिए, नदी के दोनों तटों पर सेना तैनात रहनी चाहिए। मछुओं द्वारा भलीभाँति जाँच किए गए घाट पर ही वह स्नान करे। इसी प्रकार संपेरों द्वारा परिशोधित उद्यान में ही वह भ्रमण करे।

(३) चोर तथा व्याघ्र आदि से रहित, कुत्ते रखने वाले शिकारियों के साथ राजा, चलते हुए लक्ष्य पर निशाना साधने के उद्देश्य से जंगल में जाय।

(४) दर्शनार्थ आये हुए किसी सिद्ध या तपस्वी से मिलते समय राजा, अपने विश्वस्त सशस्त्र पुरुष को साथ ले ले। अपने मंत्रि-परिषद् के साथ ही वह सामंत

(१) निर्याणेऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्त-शस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यङ्गं गच्छेत् । न पुरुषसम्बाधमवगाहेत । यात्रासमाजोत्सवप्रवहणानि च दशवर्गिकाधिष्ठितानि गच्छेत् ।

(२) यथा च योगपुरुषैरन्यान्राजाऽधितिष्ठति ।
तथाऽयमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान् ॥

इति विनयाधिकारिके प्रथमाधिकरणे आत्मरक्षितकं विंशोऽध्यायः ।

—: ० :—

राजा के दूत से मिले । घोड़े, हाथी या रथ पर सवार युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाली सेना का वह युद्धोचित कवच आदि पहिन कर सैनिक वेश में निरीक्षण करे ।

(१) बाहर जाते या बाहर से आते समय राजा, हाथ में दण्ड लिये रक्षकों द्वारा दोनों ओर से सुरक्षित मार्ग पर चले । ऐसा प्रबंध हो कि रास्ते भर में कहीं भी राजा को शस्त्ररहित पुरुष, संन्यासी या लूला-लंगड़ा, अपंग व्यक्ति न दिखाई दे । पुरुषों की भीड़ में भी वह कदापि न घुसे । किसी देवालय, सभा, उत्सव तथा पार्टी आदि में वह शामिल होने जाय तो कम से कम दस सिपाही तथा सेनानायक उसके साथ उपस्थित रहें ।

(२) विजय की इच्छा रखने वाला राजा जैसे अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरों को कष्ट पहुँचाता है, उसी प्रकार दूसरों के द्वारा दिये गए कष्टों से भी वह अपनी रक्षा करे ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण में बीसवाँ अध्याय समाप्त ।

—: ० :—